**वैष्णव भक्ति नाट्य परंपरा में लोकनाट्य 'बिदापत' : अध्ययन और विश्लेषण**

## भूमिका

भारतीय इतिहास में मध्यकाल का समय व्यापक स्तर पर परिवर्तनों का युग था। एक ऐसा समय जब समाज, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, सामाजिक सभी धरातल पर चिंतनशील था। भारतीय समाज धर्म के कर्मकांडीय स्वरूप तथा वर्णवाद जैसी अमानवीय व्यवस्थाओं से त्रस्त था तथा समस्याओं से जूझ रहा था। अंततः भक्ति आंदोलन के रूप में तत्कालीन जनमानस के समक्ष एक व्यापक विकल्प प्राप्त होता है। इस काल को भक्तिकाल की संज्ञा देने पर विद्वानों के मध्य मतभेद है। इतिहासकारों ने इस युग को कई दृष्टियों से मत्वपूर्ण माना है। इस युग में कई धार्मिक आंदोलनों का स्वरूप उभर कर आता है। साहित्येतिहासकारों ने सम्पूर्ण भक्तिकाल को चार भाग में विभक्त किया। इन धाराओं के अंतर्गत सगुण शाखा सुदृढ़ रूप में सम्पूर्ण राष्ट्र को सांस्कृतिक सूत्र में बांधती है। सगुण भक्ति धारा के अंतर्गत वैष्णव भक्ति आंदोलन का राष्ट्रीय स्वरूप तत्कालीन समाज के समक्ष आता है।"भक्ति द्रविड़ उपजे लाये रमानन्द" भक्ति आंदोलन का उद्भव द्रविड़ प्रदेश से माना गया है, जिसके विकास में मध्यकालीन उत्तर तथा पूर्वोत्तर भारत के क्षेत्र की व्यापक भूमिका थी। वैष्णव भक्ति आंदोलन के भीतर इतिहास की रूढ़िग्रस्त मान्यताओं को खंडित करने क्षमता थी। दक्षिण में तमिल प्रदेश आलवारों तथा नयनारों के वैचारिक साये में जहाँ वैष्णव मत का व्यापक प्रभाव फैल रहा था तो उत्तर भारत के संत ठीक विपरीत इस आंदोलन का दूसरा स्वरूप लेकर जनमानस के समक्ष खड़े होते है। सम्पूर्ण वैष्णव आंदोलन में एक समानता इसके ईश्वर को लेकर थी। विष्णु के दो प्रमुख अवतार 'राम' तथा 'कृष्ण' विराट सामाजिक समन्वय की चेतना के साथ अवतरित होते हैं। तुलसीदास ने रामचरितमानस में राम को आदर्श चरित्र के रूप में स्थापित किया तो जयदेव ने गीतगोविंद के माध्यम से कृष्ण को सामान्य युवा की तरह प्रेम प्रसंग में विलाप करते हुए दिखाया है। भक्तिकाल की सबसे प्रमुख विशेषता ईश्वरीय चरित्रों का अलौकिक से लौकिक धरातल पर उतरना था। वैश्विक परिदृश्य में देखें तो जिस प्रकार यूरोप में पुनर्जागरण काल आया ठीक उसी तरह भारत में मध्यकाल का युग वैचारिक दृष्टि से नवजागरण का काल था। ईश्वरीय अलौकिक चरित्र के स्थान पर मानवीय चरित्रों को स्थापित किया गया। अंततः कहा जाए तो दक्षिण से उत्तर भारत तक सम्पूर्ण राष्ट्र एक ही आंदोलन की मशाल में अपना भविष्य देख रहा था।

भक्तिकाल में न केवल काव्यकला अपितु संगीत, नृत्य, चित्र तथा मूर्ति आदि कलाओं की उन्नति भी हुई। इन सभी कलाओं में नाट्यकला को बहुजन सम्प्रेषण का माध्यम माना गया। भक्तिकाल के संतों ने इस माध्यम को वैचारिक दृष्टि से शुष्क पड़ी भूमि पर वैष्णव रूपी अमृत के रूप में प्रयोग किया। जनमानस इस विचारधारा को अपने जीवन के समीप मनाने लगा, जहाँ ईश्वर के मानवीय अवतार

उनके कष्ट को हरते हैं। इस वैचारिक आंदोलन की पृष्ठभूमि में लीला प्रधान नाटक प्रमुख थे। वैष्णव भक्तिधारा में भगवान की लीलाओं का नाटकीय प्रस्तुतीकरण मनोरंजन की वस्तु नहीं, आध्यात्मिक उन्नयन की युक्ति बन गई और वह उच्च भावभूमि मिली जिसके कारण उसे भारतीय जनमानस में अनोखा सम्मान और लोकप्रियता प्राप्त हो सके। उत्तर भारत की ब्रज भूमि कृष्ण तथा बनारस राम भक्ति का प्रमुख केंद्र था। ब्रज में कृष्ण भक्ति के अंतर्गत कीरतन की परंपरा पहले से मौजूद थी, जिसमें नृत्य, गीत, वाद्य, ताल आदि के समनव्य से रास परंपरा का सूत्रपात हुआ। वैष्णव भक्ति आंदोलन की छाया में कई नाट्य रूपों का स्वरूप उभर कर आता है, जिसमें कृष्ण तथा राम के कथानकों का मंचन होता था। इस पृष्ठभूमि में कृष्ण को केंद्र में रखकर कई नाट्य रूपों का जन्म हुआ, जिसमें केरल का 'कुटियाट्टम', महाराष्ट्र का 'ललित' तथा 'दशावतार', तमिलनाडु का 'भागवत मेल' प्रमुख है। विचार करने पर पूर्वाञ्चल(बिहार, बंगाल, आसाम, त्रिपुरा, मणिपुर, उड़ीसा,) की भूमिका वैष्णव पृष्ठभूमि में विशेष रूप से उभर कर आती है।बंगाल में चैतन्यदेव, बिहार में विद्यापति तथा उमापति, असाम में शंकरदेव वैष्णव आंदोलन के प्रणेता रहे। जयदेव द्वारा रचित गीतगोविंद की अभिनय तथा संगीत पद्धति ने पूर्वी तथा दक्षिण भारत के लगभग सभी नाट्य रूपों को प्रभावितकिया। यह इतना प्रसिद्ध था की आज तक उड़ीसा के जगन्नाथ मंदिर में गीतगोविंद का प्रदर्शन होता है। जयदेव के पश्चात विद्यापति कृष्ण काव्य के बड़े प्रणेता हुए इनके द्वारा रचित राधा कृष्ण आधारित प्रेम प्रसंग बिहार तथा बंगाल के लोकनाट्यों में प्रस्तुत होता है। तीसरा महत्वपूर्ण केंद्र उमापति द्वारा रचित पारिजातहरण नाटक है, जो अपने कथ्य तथा शिल्प के कारण असम के अंकिया नाट, बिहार के कीर्तनियाँ तथा बिदापत, बंगाल के जात्रा आदि के मंच पर इसका प्रदर्शन होता है। बिदापत कृष्ण विषयक रंगमंच की देन है, जिसका वर्तमान स्वरूप भक्तिकाल की वैष्णव पृष्ठभूमि में आया। बिदापत में पारिजातहरण, गीतगोविंद, कालियदमन, बंसीलीला, मानलीला, दधिलीला आदि का मंचन होता है। सभी कथानक के केंद्र में कृष्ण है। बिदापत के नामकरण को लेकर विद्वानों में मतभिन्नता है। वैष्णव लोक नाटकों के प्रदर्शन शैली तथा मंचीय स्वरूप में कुछ हद तक समानताएं भी मिलती है।

प्रस्तुत शोध में हमने वैष्णव भक्ति आंदोलन के उद्भव और विकास पर शोधपरक चर्चा की गई है। इसमें वैष्णव नाट्य रूपों के विकास तथा उनके शिल्प के अन्तः सम्बन्धों पर भी प्रकाश डाला गया है। दूसरा बिदापत के नामकरण के मूल कारणों को खोजना इस शोध का एक महत्वपूर्ण पहलू है। उपसंहार में लोक नाट्य बिदापत का अन्य वैष्णव लोकनाट्यों के साथ अन्तः सम्बन्धों को खोजा गया है।

सम्पूर्ण शोध को पाँच भागों में विभक्त किया गया है –

**वैष्णव भक्ति नाट्य परंपरा में लोकनाट्य 'बिदापत' : अध्ययन और विश्लेषण**

**वैष्णव भक्ति आंदोलन और नाट्य परंपरा :** इसमें वैष्णव भक्ति के सूत्रों की चर्चा है। तथा भक्तिकाल की पृष्ठभूमि में उद्भित महत्वपूर्ण नाट्य रूपों का उल्लेख किया गया है।

**लोकनाट्य बिदापत का उद्भव, विकास तथा नामकरण :** इसमें बिदापत के उद्भव पर प्रकाश डाला गया है, जिसमें ज्योतिरीश्वर ठाकुर के 'वर्णरत्नाकर' में बिदापत के प्राचीनतम स्वरूप का पता चलता है। साथ ही बिदापत के विकास का भी उल्लेख किया गया है। बिदापत के नामकरण को लेकर उठे मतभेद को दूर करने का प्रयास किया गया है।

**बिदापत का कृतित्व पक्ष :** बिदापत पर मंचित होने वाले कथानकों का वर्णन किया गया है। बिदापत के कथानकों में कृष्ण तथा राधा के प्रसंग मुख्य रूप से आते हैं। विशेष बात कृष्ण का सामाजिक होना है वह कोई चमत्कार नहीं करते बल्कि लौकिक धरातल पर लीला करते हैं। मूल कथानक तथा लोक नाट्य में आने पर इन कथानकों में क्या बदलाव आए इस पर भी चर्चा की गयी है।

**बिदापत रंगशिल्प एवं रंगशाला:** इस अध्याय में वैष्णव लोक नाट्यों के रंगशिल्प एवं रंगशाला की चर्चा करते हुए बिदापत की प्रस्तुति शैली पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही बिदापत में शास्त्रीय रंगमंच का अन्वेषन तथा विश्लेषणकिया गया है।

**बिदापत नाच का वैष्णव भक्तिकालीन अन्य नाट्य परम्पराओं के साथ अन्तःसंबंध का शोध परक मूल्यांकन:** यह अध्याय सम्पूर्ण शोध का उपसंहार है। इसमेंबिदापत नाच का अन्य वैष्णव नाट्य परम्पराओं के साथ अंतःसंबंध का मूल्यांकनकिया गया है। पूर्वाञ्चल भारत में वैष्णव नाट्य परम्पराओं के स्वरूप में समानता देखने को मिलती है। एक ही विचारधारा को यह वैष्णव नाट्य रूप किस तरीके से प्रसारित कर रहे थे, तथा बिदापत की उसमे क्या भूमिका थी इसका मूल्यांकनकिया गया है।

शोध में क्षेत्र सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया। साथ ही प्राथमिक तथा द्वितीयक स्रोतों का प्रयोग करते हुए वर्णनात्मक तथा विश्लेषणात्मक विधि का सहारा लिया गया।

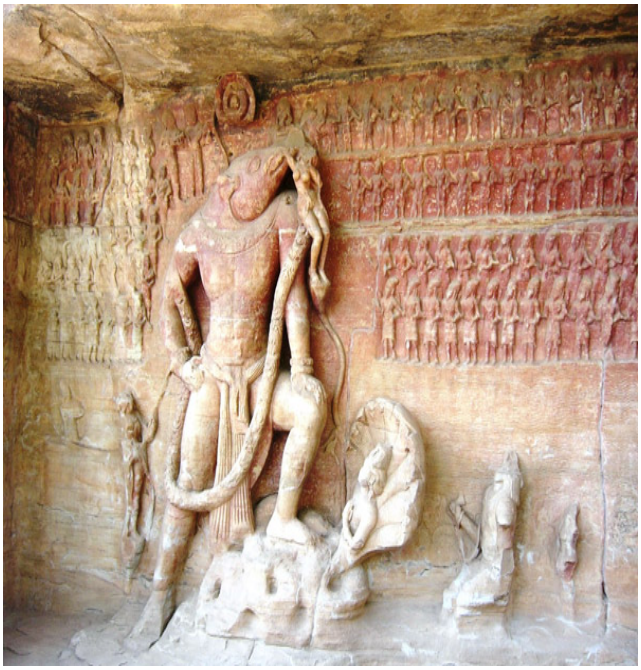

## प्रथम अध्याय

## वैष्णव भक्ति आंदोलन और नाट्य परंपरा

## 1.1भक्ति आंदोलन :-

भारतीय इतिहास में मध्यकाल राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा सामाजिक सभी दृष्टि से महत्वपूर्ण था। एक और जहाँ इस्लामी संस्कृति भारतीय सामाजिक संरचना को प्रभावित कर रही थी तो वहीं इसकी पृष्ठभूमि में भक्ति आंदोलन का सूत्रपात भी होता है। साहित्येतिहास में इसे स्वर्णिम काल की संज्ञा दी गई है। "भक्ति आंदोलन ने समय समय पर लगभग पूरे देश को प्रभावित किया और उसका धार्मिक सिद्धांतों, धार्मिक अनुष्ठानों, नैतिक मूल्यों और लोकप्रिय विश्वासों पर ही नहीं, बल्कि कलाओं और संस्कृति पर भी निर्णायक प्रभाव पड़ा।"[1]

उत्तरी भारत में चोदहवीं से सत्रहवीं शताब्दी में फैली भक्ति आंदोलन की उद्दाम लहर समाज के वर्ण, जाति, कुल और धर्म की परिसीमाओं का अतिक्रमण कर सम्पूर्ण जनमानस की चेतना में व्याप्त हो गई थी। जिसने एक जन आंदोलन का रूप ग्रहण कर लिया। "भक्ति आंदोलन में साधक या भक्त के द्वारा मोक्ष प्राप्ति अथवा आत्म – साक्षात्कार के लिए परमात्मा के सगुण या निर्गुण रूप की भक्ति ही नहीं की गई वरन भक्ति के माध्यम से तदयुगीन सामाजिक जीवन में स्थित एक वर्ण या जाति के प्रति कीए गए अत्याचार, अन्याय और शोषण के खिलाफ असहमति और विरोध का प्रदर्शन था। साथ ही उसने जन सामान्य की आशाओं, आकांक्षाओं और आदर्शों की भी अभिव्यक्ति हुई थी।"[2]

भक्ति आंदोलन के केंद्र में सामाजिक व्यवस्था ही थी। प्राचीनतम रूढ़ियों, कर्मकांडों, वर्णवाद के खिलाफ एक सशक्त विरोध की लहर ही इस आंदोलन के केंद्र में थी। एक ऐसा वैचारिक आंदोलन जो भारतीय जनमानस के लिए पुनर्जागरण का युग भी था।

भक्ति आंदोलन के जन्म को लेकर साहित्य के इतिहासकारों ने अपने अपने ढंग से तर्क दिये। यह भारतीय साहित्य के इतिहास में ऐसा वैचारिक आंदोलन था जिसकी सबसे अधिक व्याख्या की गई। इस आंदोलन की जड़ें इतनी गहरी थी की इस आंदोलन पर आज तक हर नई दृष्टि से विचार हो रहा है। " जार्ज ग्रियर्सन ने इसे ईसाईयत की देन कहा तो आचार्या रामचंद्र शुक्ल ने मुसलमानी साम्राज्य की स्थापना को मुख्य कारण माना, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने सम्पूर्ण भक्ति आंदोलन और साहित्य को 'भारतीय चिंता का स्वाभाविक विकास' यानि परंपरा का विकास माना है"। [3]

---

[1] चंद्र,सतीश,'मध्यकालीन भारत में इतिहास लेखन ,धर्म और राज्य का स्वरूप ,पृष्ठ. 82

[2] सिंह,कुंवरपाल,'भक्ति आंदोलन : इतिहास और संस्कृति ',पृष्ठ 77

[3] सिंह,गोपेश्वर,'भक्ति आंदोलन के सामाजिक आधार',भूमिका, पृष्ठ. 5

भक्तिकाल पर साहित्य विद्वानों से इतर इतिहासकारों ने भी प्रकाश डाला उनमें विशेषतः इरफान हबीब और रामशरन शर्मा रहे। इरफान हबीब के अनुसार " उत्तर भारत में भक्ति आंदोलन की निर्गुण धारा के उत्थान में शिल्पियों और जाटों – कीसानों की प्रमुख भूमिका रही है। वे निर्गुण धारा को 'एकेश्वर धारा' कहते हैं"। [1]

तेरहवीं-चोदहवीं शताब्दी में नए शासकों की सत्ता स्थापित होने पर विलास सामाग्री और सुविधाओं की मांग बढ़ी । केन्द्रीय सत्ता ( खिलजी-तुगलक-सूरी शासकों ) में स्थापित होने पर सड़कों,भवनों आदि का निर्माण तेजी से होने लगा। इससे अवर्ण, शिल्पियों की आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ । आर्थिक स्थिति बेहतर होने पर उनमें अपनी सामाजिक मर्यादा को ऊपर उठाने की भावना पैदा हुई। निर्गुण – पंथ के अवर्ण संतों की भावना का सामाजिक आधार यही था। भक्तिकाल में निम्न तबका ऊपर उठने की आकांक्षा रखने लगा तथा भक्तिकाल के रूप में उन्हे आशा की कीरण दिखाई दी।

भक्तिकाल की सामाजिक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को जानना अति आवश्यक है। राजनीतिक दृष्टि से यह युग इस्लामी प्रभाव से आक्रांत रहा। मध्ययुगीन विश्व में काफी उथल पुथल के कारण इस्लामिक शासकों ने भारत की तरफ रुख किया। तुर्कों तथा इस्लाम के आक्रमण से भारतीय समाज में अस्थिरता का दौर चालू हुआ। "उत्तर भारत में इस्लाम के आगमन और 12वीं सदी के अंत में तुर्कों द्वारा राजपूत राज्योंकी पराजय ने शक्तिशाली तत्वों को खुला छोड़ दिया। आने वाली सदियों में इसने भक्ति के लोकप्रिय आंदोलनों के विकास का मार्ग प्रशस्त किया"। [2]

यह माना जा सकता है की प्रत्येक युग का साहित्य परिस्थितियों की उपज होता है। और मध्यकालीन धार्मिक आंदोलनों को तीव्र और गतिशील बनाने में इन परिस्थितियों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। परंतु मूलतः वह भारतीय चिंता की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। सहस्त्र वर्षों के अध्यत्मिक चिंतन का प्रतिफलन। उपनिषद उनके मूल स्रोत हैं। हिन्दी भक्ति को सच्चे परिप्रेक्ष में समझने के लिए यह आवश्यक है कि इसकी पूर्ववर्ती विचारधारा और धार्मिक साहित्य का अध्ययन किया जाए। इस दृष्टि से 8वीं से 15वीं सदी का धार्मिक साहित्य विशेष महत्व रखता है। पूरे देश में वेदमत और लोकमत का समन्वय हो रहा था अथवा यह कह सकते हैं कि पंडित वर्ग तक सीमित

---

[1] हबीब,इरफान,'दी हिस्टोरिकल बॅकग्राउंड ऑफ दी पोपुलर मोनोथीयोस्टिक मूवमेंट इन फिफ़्टींथ-सिक्सटीन्थ सेंचुरीज, 1965, पृष्ठ. 52

[2] चंद्र,सतीश,'मध्यकालीन भारत में इतिहास लेखन ,धर्म और राज्य का स्वरूप ,पृष्ठ.85

शास्त्रीय चिंतन के उच्च धरातल का स्थान अब जनमानस ले रहा था। भाषा और विचार दोनों दृष्टि से सम्पूर्ण धार्मिक आंदोलन लोकोन्मुख हो रहा था। संस्कृत का स्थान जन भाषाएँ ले रही थी, जिसमें शस्त्र निरेपक्ष उग्र विचारधारा का स्वर सुनाई पड़ रहा था। 8वीं सदी से प्रारम्भ हुये आंदोलन का न केवल धार्मिक अपितु सांस्कृतिक एवं सामाजिक महत्व भी था। यह आंदोलन इस दृष्टि से भी महत्वपूर्ण थे कि इन्होने ही राष्ट्रीय स्तर पर भक्ति आंदोलन की नीव रखी। मध्यकाल का भक्ति आंदोलन अचानक उत्पन्न नहीं हुआ बल्कि उसके विकास के सूत्र हमें 8वीं से 10वीं शताब्दी के धार्मिक आंदोलनों में प्राप्त होते हैं। मध्यकाल का आंदोलन सामाजिक दृष्टि से समानता और न्याय का आंदोलन है। यह वर्णव्यवस्था में पिसती, उंच-नीच की भेद भावना से कराहती तथाकथित अपरिश्य समझी जाने वाली जाति का आंदोलन है, जो वर्ग वैषम्य के अन्यायपूर्ण जूते को उतार फेंकने के लिए व्याकुल हो रही थी।

भक्तिकाल के पथ प्रदर्शकों ने अपने युग काल के सभी सामाजिक वर्गों के समक्ष प्रश्न चिन्ह लगाए।

" दादू सो मोमिन मोम दिल होई।
साईं कुं पहिचाने सोई॥
ज़ोर न करे हराम न खाई।
सो मोमिन भिस्ति में जाई "॥[1]

भक्ति आंदोलन का महत्वपूर्ण पक्ष यह था कि इसमें विभिन्न संतों ने सामाजिक सुधार आंदोलन के माध्यम से समाज में एकता के सूत्र को सायोंजित किया। इरफान हबीब के अनुसार

"भक्ति आंदोलन के सभी नेता समाज की निम्न श्रेणियों और निम्न जातियों से संबन्धित थे। कबीर बनारस का जुलाहा, नानक एक छोटा व्यपारी, धन्ना एक जात कीसान, रैदास एक चमार और दादू एक बंजारा था। इन सबने एकेश्वरवाद को अपने सुधार आंदोलन का आधार बनाया"। [2] उत्तर की तरह दक्षिण में विदेशी आक्रमणों से उत्पन्न संकट और विदेशियों के अर्यीकरण का प्रश्न तो न था, परंतु पिछड़ी, आदिम कबीलाई जातियों के संस्कृतिकरण की समस्या वहाँ कम गंभीर न थी। पुराना

[1] दादू दयाल ग्रंथावली ,पद कर्मांक 28,पृष्ठ.151

[2] हबीब,इरफान,'15वीं-17वीं शताब्दी के एकेश्वरवाद की एतिहासिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ 82

ब्राह्मण धर्म अनन्य प्रकृति के कारण यह कार्य करने में असमर्थ था। यह ऐसा कार्य था जिसे ईश्वर की सर्व सुलभ भक्ति पर आधारित वैष्णव और शैवमत सक्षमता के साथ सम्पन्न कर कर सकते थे। "शूद्र और निम्न जतियों को उनकी सुधरी हुई और मजबूत स्थिति तथा संख्या के अनुरूप कम से कम प्रशासनिक क्षेत्र में रियायतें व महत्व ब्रजबूलीकरके उन्हे संतुष्ट करने का कार्य भक्त ही कर सकते थे"। [1] कुल मिलाकर दक्षिण में भारत की ऐसी धारा प्रवाहित हो रही थी जिसमें स्त्रियॉं सहित शूद्रों व निम्न वर्गों,जिनका अधिकांश वैष्णव धर्म के द्वारा संस्कृतिकरणकी प्रक्रिया से आदिम कबीलाई जातियों से आया होगा, को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। 'पेरीय पुराण' के अनुसार नयनारों में कुछ ब्राह्मण थे, कुछ वेल्लाल और कुछ तो आदिवासी जातियों के थे। [2] 'इसी तरह बारह अलवारों में दो शूद्र और एक निम्न पनर जतियों का था' [3]

दूसरे उत्थानकाल में भी हम भक्ति के प्रवाह को पहले लोक प्रवाह के रूप में ही पाते हैं। "शैव व वैष्णव भक्त अधिकांशतया सामान्य जनता के लोग थे। और अति भावमुलक भक्ति सरल धर्मकी द्योतक थी। बाद में उनके भक्ति गीतों की सरलता, भावोंज्ज्वलता और उनकी सौन्दर्य भावना को पौराणिक अंधविश्वासों तथा तात्विक मताग्रहों के बीच दबा दिया गया"। [4]आलवार भक्तों के उपरांत आने वाले वैष्णव आचार्य कट्टर धार्मिक कुलों के थे और परंपरागत शास्त्रों की सब मर्यादाओं की रक्षा करना अपना कर्तव्य समझते थे। [5]इसलिय एक तरफ जहाँ वैष्णव में कर्मकांड,वर्णवाद,का विरोध था तो वहीं दक्षिण में शास्त्रों की अवहेलना को घोर दंडनीय माना जाता था। अलवार भक्तों में धार्मिक कर्मकांडों को नियमित रूप से अपनाया जाता था।

भक्तिकाल के सामाजिक आंदोलन की पृष्ठभूमि पर भी सवाल उठता है। प्रश्न यह उठता है की क्या है जन – आंदोलन था? यह सीमित अर्थों में ही जन आंदोलन था, सम्पूर्ण अर्थों में नहीं। यह जनता के जीवन स्तर में किसी परिवर्तन का अहवाहन नहीं करता। इस आंदोलन की दर्शननिक परिणति स्वयं की मुक्ति और ईश्वर से एकात्म स्थापित करना था। गुरु की सहायता से मोक्ष प्राप्ति तथा प्रभु कृपा पर

---

[1] वर्मा,लक्ष्मीनारायण,'भक्ति आंदोलन की समाजैतिहासिक पीठिका',पृष्ठ. 16

[2] डॉ. यदुवंशी,'शैवमत',पृष्ठ. 151

[3] दास,एस. एन.,'भारतीय दर्शन का इतिहास',भाग 3,पृष्ठ 9

[4] के,दामोदरन,'भारतीय चिंतन परंपरा, पृष्ठ 257

[5] बड़थ्वाल,दत्त पीथाम्बर,'हिन्दी काव्य में निर्गुण संप्रदाय',पृष्ठ 77-78

अधिक बल था।[1] इस आंदोलन का दार्शनिक पक्ष भी था। भक्त और ईश्वर का संबंध, धर्मग्रंथों की मान्यता तथा समाज के संबंधमें इनके दृष्टिकोण अलग-अलग है।

16वीं और 17वीं सदियों ने उत्तर, पूर्व और पश्चिम भारत में लोकप्रिय भक्ति के एक आश्चर्यजनक पुनरुत्थान को देखा जो समान्यतया विष्णु के अवतारों के रूप में राम और कृष्णकी पूजा के चारों और केन्द्रित था। पंजाब और राजस्थान के कुछ क्षेत्र को छोड़कर इन आंदोलनों ने लोकप्रिय एकेश्वर आंदोलनों को धूमिल कर दिया।

मध्यकाल का युग त्रस्त समाज को विकल्प देने का भी था। समाज से निकले नेताओं ने अपने व्यक्तिगत विचारों को आंदोलन का रूप दिया था उसे धार्मिक जमा पहनाया गया। यूरोप के महान सुधार आंदोलन का उल्लेख करते हुए एंगल्स ने लिखा था–

"मध्य युग ने धर्म दर्शन के साथ विचारधारा के सभी रूपों, दर्शन,राजनीति विधिशास्त्र को जोड़ दिया और इन्हे धर्म दर्शन की उप-शाखाएँ बना दिया। इस तरह उसने हर सामाजिक और राजनीतिक आंदोलन को को धार्मिक जमा पहनाने के लिए विवश कर दिया। आम जनता की भावनाओं को धर्म का चारा देकर और सब चीजों से अलग अलग रखा गा। इसलिए, कोई भी प्रभावशाली आंदोलन आरंभ करने के लिए अपने धार्मिक हितों को धार्मिक जामें में पेश करना आवश्यक था"। [2]

यही कथन 14वीं और 17वीं शताब्दियों के काल के भारत पर भी समान रूप से लागू होता है। परंतु यह शुद्धतः धार्मिक आंदोलन था। वैष्णव के सिद्धान्त मूलतः उस समय व्याप्त सामाजिक–आर्थिक यथार्थ की आदर्श अभिव्यक्ति थे। इस आंदोलन ने विभिन्न भाषाओं और विभिन्न धर्मवालों जन समुदायों को एक सुसंबंधभारतीय संस्कृति के विकास मदद की।

## भक्तिकाल की धाराएँ

भक्तिकाल की दो धाराएँ हमें मध्यकाल में दिखती है एक जिसे सगुण कहा गया है तथा दूसरा निर्गुण धारा। "निर्गुण और सगुण धारा में अंतर इस बात का नहीं है की निर्गुणियों के राम गुणी नहीं है और सगुण मतवादियों के राम और कृष्ण गुण सहित। निर्गुण और सगुण मतवाद का अंतर अवतार एवं लीला की दो अवधारनाओं को लेकर है"।[3] निर्गुण मत के इष्ट भी कृपालु, सहृदय,दयावान करुणाकर

---

[1] चंद्र,सतीश,'उत्तर भारत में भक्ति आंदोलन के उदय की एतिहासिक पृष्ठभूमि की आलोचना, पृष्ठ. 15

[2] एंगल्स,'लुडविग फायरबारव',अध्याय 4,पृष्ठ 50

[3] नगेंद्र,भारतीय साहित्य का समेकीत इतिहास, पृष्ठ. 260

है, वे भी मानवीय भावनाओं से युक्त है, वे न अवतार ग्रहण करते हैं न लीला। वे निराकार है, सगुण मत के इष्ट अवतार लेते हैं, दुष्टों का दमन करते हैं,साधुओं की रक्षा करते हैं और अपनी लीला से भक्तों के चित्त का रंजन करते हैं। भक्तिकाल की सगुण तथा निर्गुण धाराओं का विभाजन ईश्वर के लौकिक तथा आलौकिक रूपों को ध्यान में रखकर हुआ। "सम्पूर्ण भक्तिकाल में सगुण और निर्गुण भक्ति का द्वंद देखने को मिलता है, जहाँ सूरदास के भ्रमर गीत में उद्धव और गोपीयों के मध्य संवादों में यह झलकता है तो कबीर और तुलसी के राम के रूप में यह द्वंद मध्यकाल के रूप में स्थापित है"।[1]

अतः सगुण मतवाद में विष्णु के 24 अवतारों में से अनेक की उपासन होती है,यद्यपि सर्वाधिक लोकप्रिय और लोकपूजित अवतार राम एवं कृष्ण ही है।

सगुण तथा निर्गुण दोनों की उपधाराएँ हैं। सगुण काव्य की उपधाराओं को राम-भक्ति शाखा तथा कृष्ण भक्ति शाखा कहा जाता है। निर्गुण की दो उपधाराएँ 'ज्ञानाश्रयी शाखा' और 'प्रेमाश्रयी शाखा' है। प्रेमाश्रयी ही हिन्दी हिन्दी का सूफी काव्य है। निर्गुण में ज्ञनाश्रयी शाखा के संतों ने ज्ञान पर अधिक बल दिया। इनमें कबीर, संत रैदास, गुरु नानक, दादूदयाल, सुंदरदास, रज्जब आदि आते हैं। सूफी संतों ने लोक प्रचलित कथानकों को अपने साहित्य में रचा। इन सभी संतों ने लोक प्रचलित कथानकों को अपने साहित्य में रचा। इन सूफी संतों में कुतुबन, मालिक मोहम्मद जायसी, मंझन, उस्मान, कासिम शाह, नूर-मुहम्मद प्रमुख थे।

सगुण भक्त कवियों ने प्राचीन भारतीय मान्यताओं में नया संदेश दिया। सगुण भक्ति काव्य का सामाजिक, पारिवारिक एवं सांस्कृतिक सभी दृष्टियों से विशेष महत्व रहा। "मर्यादावद के पोषक राम भक्त कवि तुलसीदास ने जो सामाजिक आदर्श उपस्थित किया उसका प्रभाव आज भी विद्यमान है। तत्कालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक विश्रिंखलता एवं अराजकता के युग में उन्की वाणी ने भारतियों को श्रेयस्कर मार्ग दिखलाया। टूटते हुए पारिवारिक सम्बन्धों और स्वार्थ के लिए संघर्षशील मनुष्यों को आलोक ब्रजबूलीकिया। रामकाव्य इसका उत्कृष्ट उदाहरण है"[2]।

भक्ति आंदोलन ने सम्पूर्ण भारत को भाषायी विविधता के बावजूद सांस्कृतिक एकता में बंधा। उदाहरण के लिए वैष्णव आंदोलन एक ही मत को लेकर चला परंतु उसका प्रचार प्रसार दक्षिण भारत से लेकर उत्तर भारत तक हुआ। राम तथा कृष्ण सम्पूर्ण भारत में जनमानस के लोकप्रिय चरित्र के रूप में उभरे।

---

[1] त्रिपाठी,विश्वनाथ,'हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास',पृष्ठ. 14

[2] सिंह,कुवांरपाल,'भक्ति आंदोलन : इतिहास और संस्कृत, पृष्ठ145

लोक मर्यादा का आदर्श स्थापित करने की दृष्टि से अकेला 'रामचरितमानस' उत्तम ग्रंथ है। कृष्ण भक्त कवियों ने अपने आराध्य के लोकरंजक स्वरूप को उपस्थित करते हुए जीवन में आनंद का संचार किया। इन कवियों में निहित समर्पण की भावना ने अहं का विकास किया। सगुण भक्त कवियों का सर्वाधिक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक योगदान वर्ण व्यवस्था का आदर्श प्रस्तुत करते हुए उनका संरक्षण रहा है। इन कवियों ने एक और धूर्त पंडितों के संकीर्ण मतों का खंडन किया तो दूसरी और निर्गुणियाँ संतों के श्रुति सम्मत तथा विरति विवेक युक्त मार्ग के अनुकरण पर बल दिया। उस समय धर्म या संस्कृति के दो केंद्र बने काशी और वृन्दावन। इन केन्द्रों से जीवन के आचार और विचार दोनों पक्षों को बहुत प्रेरणा मिली।

भक्त कवियों ने आभिजात्य के अछद्द को तोड़ा और इसके लिए अपने चरितनायकों को लोकभूमि पर संचारित किया। मूल्य भरे सामाजिक कर्म से ही मानव व्यक्तित्व को अर्थदीपति मिलती है। भक्ति काव्य अपने नायकों को देवत्व की भूमि से बाहर लाकर उन्हे सामान्यजन के मध्य सक्रिय करते है। तुलसी का ध्यान ग्राम – कृषक समाज है। सूर में कृषि – चरागाही संस्कृति की प्रधानता है। कबीर का बल सांस्कृतिक सौमनस्य पर है और जायसी प्रेमपंथ को विकल्प के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

"भक्तिकाव्य में लोकजीवन की केन्द्रियता के मूल में सजग सामाजिक – सांस्कृतिक चेतना है, जहाँ भक्तिशास्त्र पांडित्य, कर्मकांड, पुरोहितवाद से निकलकर सामान्य भूमि पर विचरण करती है"।[1]

भारतीय इतिहास में समाज के भीतर ही कलाओं का विकास होता रहा। सामाजिक परिवर्तन का स्पष्ट प्रभाव उन पर देखने को मिलता है। इन लोक कलाओं ने सदियों से अपने भीतर संस्कृत को संजोय रखा है।

भक्तिकाल में जब भारत विशाल सांस्कृतिक बदलाव के दौर से गुजर रहा था, तो इन कलाओं ने अपने स्तर पर इसे बचाए रखा। भक्तिकाल में न केवल काव्यकला अपितु संगीत, नृत्य, चित्र, मूर्ति आदि कलाओं की उन्नति भी हुई। "सगुण भक्ति धारा के अधिकांश कवि संगीत के भी अच्छे जानकार थे। वृन्दावन, काव्य और संगीत दोनों का केंद्र था। अष्टछाप के सभी कवि अपने समय के श्रेष्ठ संगीतज्ञ थे। अकबरी दरबार के के प्रसिद्ध गायक तानसेन कृष्णभक्त कवि हरिदास के ही शिष्य थे। श्री नाथ जी के मंदिर में प्रतिदिन कीर्तन के आयोजन होते थे, जिनमें विभिन्न राग – रागनियों के

---

[1] सिंह,कुवांरपाल,'भक्ति आंदोलन : इतिहास और संस्कृत, पृष्ठ 90

आधार पर स्वरताललयबद्ध संगीत की गूंज सुनाई पड़ती थी। राधावल्लभ संप्रदाय के प्रसिद्ध आचार्य थे। इसी प्रकार हरीराम व्यास ध्रुपद शैली के प्रमुख प्रचारक थे"।[1]

कृष्ण भक्ति काव्य के माध्यम से नृत्य कला के विकास में भी सहायता मिली। कृष्ण भक्त कवि अपने उपास्य की प्रेममयी लीलाओं का आनंद विभोर होकर अभिनय करा करते थे, रासलीला के माध्यम से नृत्य कला की विविध झाँकीयाँ प्रस्तुत करते थे। इनके आराध्य श्री कृष्ण तथा नाट नागर थे। गौस्वामी तुलसीदास ने मानस के आधार पर रामलीला का प्रचार किया था। इस प्रकार रामलीला और रासलीला के माध्यम से जिस लोकधर्मी नाट्य परंपरा का विकास हुआ,उसने भारतीय सांस्कृतिक जीवन को बहुत गहराई तक प्रभावित किया। कत्थक नृत्य में प्रायः राधा-कृष्ण की प्रेममयी लीलाओं की ही अभिव्यक्ति हुई है। इस प्रकार इन भक्त कवियों ने भारतीय जीवन की आध्यात्मिक चेतना को दिशा-निर्देश दिया दिया तथा लोक जीवन में नूतन: स्फूर्ति का संचार भी किया।

इन भक्त कवियों ने ईश्वर की लीलाओं को सामाजिक सांस्कृतिक चेतना का आधार बनाया तथा इन लीलाओं को लोकनाट्यों के माध्यम से जनमानस तक प्रसारित किया।

भक्तिकाल का प्रतिपाद्य विषय की दृष्टि से महत्व है ही, अर्थात इन कवियों ने सदाचार की प्रतिष्ठा की, भगवान के नाम, रूप-गुण, लीला धामका चित्रण करते हुए भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि रक्षक बने तथा धर्म, दर्शन और ललित कलाओं के माध्यम से जीवन को परिपुष्ट किया। यह काल इतिहास में वैचारिक आंदोलन के रूप में जाना जाता है। एक ऐसा आंदोलन जिसने सम्पूर्ण भारत को एकसूत्र में जोड़ दिया। भाषायी विविधता के बावजूद राम और कृष्ण जन-जन में व्याप्त है। रामायण तथा महाभारत के प्रसंगों को संतों ने लोक कलाओं के माध्यम से जन-जन तक पहुंचाया। यह वास्तविक में समाजिक चेतना का का आंदोलन था।

**<u>मुख्य बिन्दु :-</u>**

भक्ति साहित्य में जहाँ एक और मध्यकाल की सामाजिक, सांस्कृतिक चेतना उजागर हुई वहीं, दुसरी और मध्यकालीन लोक जीवन के भी पक्ष अंकीत हुए।

---

[1] शर्मा,रामविलास,'हिन्दी साहित्य की भूमिका',पृष्ठ 196

- संतों ने भक्तिकाल में ईश्वरीय आलौकिक ता को लौकिक धरातल पर उतारा। यहाँ वह मानवीय चरित्र के रूप में आते है। यही कारण है की राम और कृष्ण दो अवतारों का चरित्र भारतीय जनमानस के मन में बसा।
- भक्तिकाल में सबसे अधिक प्रभावी वैष्णव साहित्य ही रहा। इतिहास में व्याप्त कृष्ण की कथाओं को कलाओं के माध्यम से प्रचारित किया गया।

भक्ति आंदोलन में सबसे प्रभावी कृष्णभक्ति शाखा रही। वैष्णव आंदोलन में संतों ने कृष्ण विषययक कथानकों का प्रचार किया खासकर उत्तर भारत में कृष्ण भारतीय लोकमानस में प्रचलित थे।

## 1.2 वैष्णव भक्ति :-

भक्तिकाल की सगुण धारा के अंतर्गत एक ऐसी शाखा थी जिसने सम्पूर्ण भारत की विचारधाराओं को प्रभावित किया। विष्णु आलोचित पुरानो में प्रमुख देवता के रूप में है। वायु पुराण और ब्रह्मांड पुराणों में उन्हे विश्वेस्प्रभु तथा सभी लोगों के करता की उपाधि दी गई है।

" विश्वेशो लोककृदेव:...."[1]

" प्रभुविष्णु दिवाकर:...."[2]

भारतीय तत्वेताओं ने भक्ति के महात्म को समझा। विविध देवोपासनाओं के फलस्वरूप भक्ति संप्रदायों का जन्म हुआ। समन्वयवादी मनीषियों ने सबका सम्मान किया, परंतु वैष्णव भक्ति में कुछ ऐसे लोकपयोगी तत्व है, जिनके कारण इसका सर्वाधिक प्रसार हुआ। उन साधकों ने वैष्णव भक्ति में साधन –त्रय का समन्वय किया। जिससे भक्ति पाठ और भी प्रशस्त हुआ। अब भागवत भक्ति ही परम पुरुषार्थ समझी जाने लगी। भक्ति के परिवर्ती विकास पर प्रो॰ विल्सन ने इसे विभिन्न संप्रदायों के गुरुओं द्वारा अपनी प्रतिष्ठा के परिणामस्वरूप दृष्टि एवं प्रचारित बताया है।[3]

'भक्ति' शब्द की उत्पत्ति 'भज' धातु से हुई है।[4] जिसका अर्थ है 'भजना','भज'रूपी धन अथवा द्रव्य के अधिपति को भागवत कहा गया है अन जिसके लिए 'भाग' एक भाग निर्दिष्ट हुआ है

---

[1] वायु पुराण, 51।18

[2] ब्रह्मांड पुराण, 21।22।18,१६

[3] Wilson,h.h,'hindu religious',page 232

[4] जयसवाल,सुवीरा,'दि ओरिजिन एंड डेवलोपमेंट ऑफ वैष्णविज़्म(द्वितीय संशोधित एवं परिवर्धित संस्कारण, मुंशीलल मनोहर ),अध्याय 3

। वह 'भक्त' ऋग्वेद में 'भक्त' 'भक्ति' और 'भागवत' शब्दों का प्रयोग इन्ही अर्थों में हुआ है। यदि आगे चलकर भवत शब्द से एक आलौकिक सर्वशक्तिमान परम तत्व का बोध होने लगा तो उसके मूल में यही तथ्य है की उस तत्व की कल्पना एक ऐसे शक्ति के रूप में की गई, जिसका समस्त एश्वर्य एवं सम्पदा पर प्रभुत्व था और जो अपने उपासक को उसका एक अंश, 'भक्ति', ब्रजबूलीकर उसे अपना 'भक्त' बना सकती थी। इसी कारण 'भक्ति' और 'भक्त' के प्रारम्भिक प्रयोग कर्मवाच्य में हुए है और ऋग्वेद की एक ऋचा [1]में अग्नि को भक्तों और अभक्तों में भेद करने वाला कहा गया है। 'भागवत' के अनुग्रह से 'भाग' के एक अंश के प्रापक, अतिग्रहिता होने से 'भक्त' और 'भक्ति' शब्द देवी शक्ति के आठ एक प्रकार की सहभागिता एवं घनिष्ठ आत्मीयता की भावनाओं को व्यक्त करने के लिए सर्वथा उपयुक्त थे और संभवतः इसी कारण धार्मिक विचारधारा में 'भक्ति' शब्द एक सशक्त प्रतीक सिद्ध हुआ।

ऋग्वेद में अनेक अर्थों को अपने में अनुस्यूत करने के बावजूद 'विष्णु' शब्द का प्रयोग एक महान शक्ति के रूप में हुआ है। यस्क ने रश्मियों के व्याप्त होने के कारण सूर्य को विष्णु कहा है[2],जिस विष्णु के प्रताप से वृष्टि होती है और साथ हि गायों को दुग्ध होता है उसका कालांतर में गोपवेषधारियों कृष्णारव्य विष्णु होना कल्पना गामी माना जाता है , विष्णु ही यजमान तथा देवगणों के लिए ब्रज प्राप्त कराने वाला होने से ब्रजनंदन गोपीजनवल्लभ हो सकता है।[3] 'विष्णु को कहीं इन्द्र, इन्द्र का सखा'[4] कहीं अग्नि बताया गया है।

इस तरह विविध रूपों एवं नामों में उपासना का आधार होने पर भी वैदिक ऋषियों को एक परम सत्ता की आराधना अभीष्ट थी जो परिवर्ती वैष्णव भक्ति के रूप में दिखाई पड़ती है। वैष्णव धर्म में 'अनुग्रह या प्रसाद' की बड़ी महिमा गाई गाई है। श्रीमदभागवत महापुराण के 'पोषनं तदनुग्रह' के आधार पर ही वल्लभचार्य की पुष्टि मार्गीय भक्ति आधारित है। इनके अनुसार भक्ति की प्राप्ति केवल भागवत कृपा से होती है।[5]

---

[1] हर्बट,पी.सुलवीन,'ए रि-एक्जामिनेशन ऑफ दि रिलीजन्स एण्ड सिविलीजेशन हिस्टरी ऑफ रिलीजन्स' 'पृ 115

[2] अथ यद विशितों भक्ति तब विष्णुर्भवती,विष्णुविशतेवार्त्यश्नोंतेवारीयस्कनिरुक्त यास्क निरुक्त 12।16

[3] शर्मा,रामनरेश,'हिन्दी सगुण काव्य की सांस्कृतिक भूमिका,प्राथकरण' ,पृष्ठ 6

[4] Kane,'volume of studies in indology presented tokane',page 90

[5] श्रीमदभागवत महापुराण -2।10।4

## वैष्णव भक्ति नाट्य परंपरा में लोकनाट्य 'बिदापत' : अध्ययन और विश्लेषण

वैष्णव धर्म या वैष्णव संप्रदाय का प्राचीन नाम भागवत धर्म या पंचरात्र मत है। इस संप्रदाय के प्रधान उपास्य देव वासुदेव है, जिन्हे ज्ञान, शक्ति बल, वीर्य, एश्वर्य और तेज इन छः गुणों के कारण भगवन या भगत कहा गया है।

" ज्ञान शक्ति बलैश्वर्य वीर्य तेजां स्त्रिशेषतः।

भगवच्छ्वद वाच्यानि विना हर्येगुर्णादिभी." ॥[1]

महाभारत के अनुसार चारों वेदों और संखई योग के समावेश के कारण इसे 'पांचरात्र' कहते है। वैष्णव भक्ति के प्रचार में इसका प्रमुख स्थान है। आचार्य रामचंद्र शुक्लने विष्णु और वासुदेव की एकता तथा वासुदेव भक्ति का प्रारम्भ महाभारतकाल में ही सिद्ध किया है।[2] महाभारत के शांतिपर्व में विष्णु को वासुदेव कहा गया है।

उपनिषदों, पुराणों ( विष्णु पुराण, वामन, वराह, नारद, पदम, मत्स्य, ब्रह्मवैवर्त ) के पश्चात श्रीमदभागवत में विष्णु का उल्लेख हुआ है, इसमें विष्णु के अन्य स्वरूपों एवं अवतारों का तो वर्णन किया ही गया है, भगवन के श्रीकृष्ण अवतार की विविध लीलाओं का वर्णन पर्याप्त रूप में किया गया है। श्रीमदभागवत के द्वारा ही सम्पूर्ण भारत वर्ष में वैष्णव धर्म का प्रचार हुआ। परवर्ती सभी वैष्णव संप्रदायों का आधार ग्रंथ यही रहा है। विष्णु के अवतारों का विस्तृत वर्णन भागवत में मिलता है।[3]भगवान का लीला – वैचित्र्य जनता इतना दुरूह है की समान्य लोग मोहित हो जाते हैं। यही कारण भी है की वैष्णव धर्म का इतना व्यापक प्रसार हो सका।

विजयेन्द्र स्नातक ने अपने ग्रंथ 'राधावल्लभ संप्रदाय सिद्धान्त और साहित्य' में कहा है " वैष्णव धर्म के विकास और प्रसार में पुराणों का सर्वाधिक योगदान रहा है। वैष्णव संप्रदायों के परवर्तन में जिन सिद्धांतों को स्वीकार किया गया उनमें से अधिकांश का आधार पुराण– साहित्य ही है। उदाहरणार्थ चतुः संप्रदाय के अतिरिक्त श्री कृष्ण चैतन्य का 'गौड़ीय संप्रदाय' श्रीवल्लभ संप्रदाय या पुष्टिमार्ग और हितहरिवंश का 'राधा वल्लभ संप्रदाय' मुख्यतः श्रीमदभागवत और ब्रह्मवैवर्त पुराण में प्रतिपादित भक्ति पद्धति और राधाकृष्ण स्वरूप को लेकर आगे बढ़े है।[4]

---

[1] महाभारत,शान्तिपर्व, अध्याय 336

[2] शुल्क,रामचन्द्र,' सूरदास ( भक्ति का विकास ), पृष्ठ 263

[3] उपाध्याय,बलदेव,'भागवत संप्रदाय',पृष्ठ 167

[4] स्नातक,विजयेन्द्र,'राधा वल्लभ संप्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य', पृष्ठ 135

कृष्ण की उपासना का साक्ष्य गुप्त युग में भी मिलता है साथ ही विभिन्नक्षेत्रों से प्राप्त प्राचीन कृष्ण की मूर्तियों से ज्ञात होता है की कृष्ण की उपासना अत्यंत प्राचीन काल से चलती आ रही है।[1] लोकमानस में कृष्ण अलग-अलग उपनामों में व्याप्त थे । मध्यकाल में उत्पन्न भक्ति आंदोलन की सगुण शाखा में कृष्णकथा का विस्तार देखा जा सकता है । विष्णु के अवतारों में लोक रक्षक तथा लोक रंजक दृष्टिकोण से राम और कृष्ण की भक्ति का सर्वाधिक विस्तार हुआ । कृष्ण विष्णु के पूर्ण कला के अवतार कहे जाते हैं।

कहा गया है की 'भक्ति द्रविड़ उपजै लाय रमानन्द' श्रीमदभागवत पुराण के महातम वर्णन में भक्ति ने स्वयं नारदजी से कहा की में द्रविड़ में उत्पन्न हुई, कर्नाटक में बढ़ी.... अर्थात जिस भक्ति का सूत्रपात वैदिक युग से होता चला आ रहा था उसी को विकसित होने के सुअवसर द्रविड़ प्रदेश में हुआ । आलवार भक्तो के कारण दक्षिण में वैष्णव भक्ति का पूर्ण प्रचार प्रसार हुआ ।[2]

वैष्णव भक्ति को प्रचारित प्रसारित करने वाले आचार्य शंकराचार्य के अद्वैत सिद्धान्त के विरुद्ध अपने दार्शनिक तथा व्यवहारिक विचार व्यक्त किया । उनकी विचारधारा को स्वीकार न कने वालों में रामानुजाचार्य, निंबकचार्य, माध्वाचार्य, विष्णुस्वामी एवं वल्लभाचार्य ने भक्ति के लिए नवीन मार्ग खोजा । भक्ति के क्षेत्र में इन आचार्यों की देन बहुमूल्य है क्योंकी विष्णु के अवतारी रूप राम और कृष्ण को इन्होने भक्ति का उपास्य देव बना दिया । मध्यकालीन भक्ति का जो रूप संस्कृत और भारतीय भाषाओं में विकसित हुआ उसका श्रेय इन्हीं आचार्यों को है । रामानुजाचार्य के बाद रमानन्द ने राम को अधिक व्यापक स्तर पर ग्रहण किया । रामभक्ति की यह परंपरा बाद में हिन्दी कवियों में तुलसीदास जैसे समर्थ कवि द्वारा अपने सर्वोच्च शिखर तक पहुंची । कृष्ण भक्ति के लिए निंबर्क, महत्व, विष्णुस्वामी तथा इनके बाद वल्लभचार्य, कृष्णचैतन्य, हितहरिवंश, हरिदास आदि भक्तों ने जो पर्यास कीए थे वे कृष्ण भक्ति को व्यापक आयाम ब्रजबूलीकरने वाले सिद्ध हुए । वैष्णव चैतना के माध्यम से सभी साहित्य एक दूसरे के समीपी है । बंगाल पूर्वाञ्चल में चैतन्य चंडीदास ने वैष्णव मत का प्रचार किया और वह अंचल वृन्दावन से जुड़ गया । बंगाल की वैष्णव चैतना का व्यापक प्रभाव रहा और चैतन्य की प्रेरणा से षटगोस्वामी, सनातन, रघुनाथदास, रघुनाथ भट्ट, गोपाल भट्ट, जीवगोस्वामी ने ब्रजमंडल में कृष्णभक्ति को वैचारिक आधार दिया । असम में शंकरदेव का 'एकशरण धर्म' काव्य तथा नाटक के माध्यम से प्रसारित हुआ और जनसमान्य में प्रभावी बना । तमिल अलवार संत एवं वैष्णवाचार्य तेलगु में बेमना, संभेर पोतना गुजरात में 'नरसी मेहता, राजस्थान में मीरा आदि से

---

[1] जायसवाल,सुवीरा,'वैष्णव धर्म का उद्भव और विकास',पृष्ठ 70

[2] मिश्र,विश्वनाथ प्रसाद,' हिन्दी सगुण काव्य की सांस्कृतिक भूमिका', पृष्ठ 66

इस व्यापक आंदोलन की सक्रियता का पता चलता है। अवतारवाद में कृष्ण सर्वोपरि देवता रहे और केंद्र में रखकर भक्ति काव्य विकसित हुआ। विष्णु के दो प्रमुख अवतार वैष्णव परंपरा को रचना में नई गति देते है। कृष्णकाव्य का ऐसा आकर्षण है की इसमें भी संप्रदाय जाति के है। रामायण– महाभारत के चरित नायक द्वापर के है, पर जहाँ तक भक्तिकाव्य का संबंध है कृष्ण कुछ पहले आ गए और सोलह कला अवतार वाले अपने बहुरंगी व्यक्तित्व से लोकप्रिय भी हुई। राम त्रेता युग से जुड़कर भाषा रचना में थोड़ी देर से आए और चरित्र की मर्यादाओं ने उसकी सीमा तय कर दी। कृष्ण के चारों और एक समग्र लीला संसार है जिसमें राधा का प्रवेश नई भंगिमा का जन्मता है। प्रायः कहा जाता है की कृष्णकाव्य में लोकरंजक रूप अधिक है। जिसका एक कारण भागवत की प्रेरणा भी है। कृष्ण का महत्व यह है की उन्होने सम्पूर्ण कला संसार – मूर्ति, वास्तु, चित्र, संगीत आदि में स्थान प्राप्त किया। ये जनप्रिय देवता हुए और उनसे सनरस होने में कठनाई नहीं हुई। उन्हे केंद्र में रखकर संप्रदाय बने– निंबर्क, हरिदास, वल्लभ, राधावल्लभ आदि। विद्वान हाल चरित गाथा सतसई तथा गाथा सप्तसती का उल्लेख करते हैं। जहाँ कृष्ण राधा के प्रसंग आए हैं। रासलीला महत्वपूर्ण विषय बना,जिसका संकेत भागवत की रास पंचाध्यायी है। आगे चलकर जयदेव, विद्यापति में कृष्णागाथा को विकास मिला। जयदेव का गीतगोविंद अपनी मधुर कोंलकांत पदावली के लिए विख्यात है,जहाँ श्रृंगार खुली भूमि पर है और राधा कृष्ण का मानुषिकरण रासप्रसंग, मान-मुहार आदि में विशेष रूप से उभरा है। श्रृंगार की यह रासभूमि विद्यापति में विद्यमान है, जहाँ राधा लावण्य सार है और कृष्ण रास रूप हैं। संयोग– वियोग दोनों स्थितियों में विद्यापति के राधा-कृष्ण उन्मुक्त भूमिपर हैं। चैतन्य कृष्णगाथा को प्राथनाभाव से जोड़ते है और बंगाल तथा पूर्वाञ्चल में कृष्ण भक्तिकाव्य का मार्मिक विकास हुआ।[1]

कृष्ण की उपासना की जहाँ प्रचार प्रसार हुआ , वहाँ गायन और नृत्य के साथ रहा। वैष्णव संगीतशास्त्र ( चौखम्बा प्रकाशन 1982 ) की भूमिका में दर्शना झवेरी ने लिखा है : " श्री चैतन्य ने नाम कीर्तन का प्रवर्तन किया, जिसका ठाकुर नरोत्तम ने नए ढंग से विकास किया। श्री नरोत्तम ने आलाप, राग ताल आदि का प्रयोग कर रास अथवा लीला कीर्तन का प्रवर्तन किया"[2]

'रूपराम' के धर्म मंगल और कल्हण की राजतरिंगिनी से पता चलता है की नटियों और देवदासियों द्वारा शास्त्रीय नृत्य किया जाता था और उसका प्रदर्शन बंगाल के मंदिरों में होता था। दरभंगा, मिथिला, गौड़, कामरूप, एवं कलिंग (उड़ीसा) शास्त्रीय संगीत एवं, नृत्य के प्रमुख केंद्र थे। गोड़ और मगध के जरिये नेपाल, कश्मीर एवं गांधार को भी बंगाल में संगीत, वाद्य एवं नृत्य की प्रेरणा

---

[1] प्रेमशंकर,'भक्तिकाव्य का समाजदर्शन', पृष्ठ 30

[2] झवेरी,दर्शना,'वैष्णव संगीतशास्त्र ',प्रस्तावना, पृस्ठ 8

मिली। निस्संदेह संगीत के सहयोग वैष्णव मत का प्रसार हुआ और वैष्णव मत की प्रेरणा से मणिपुर जैसे आर्येत्तर भाषा क्षेत्र में इस कला का विकास और प्रचार हुआ। विभिन्न प्रदेशों में लोकगीतों एवं लोकनृत्यों की परंपरा रही। महापुरुष शंकरदेव – ब्रजबूली ग्रंथावली सम्मेलन, प्रयास 1974 के संपादक लक्ष्मीशंकर गुप्त ने ठीक लिखा हैकी " पूर्वाञ्चल में वैष्णव धर्म के उन्नायक " शंकरदेव ने अपने नाटकों के के लिए "तत्कालीन जन समुदाय में प्रचलित नृत्य, गीत तथा मनोरंजन के साधन को ढांचे के रूप में ग्रहण किया और उनके साथ अनेक संस्कृत नाट्य नियमों का संयोजन करके अंकिया नाट का नवीन स्वरूप ढाला।[1]

संगीत नाटकों के साथ संगीत शब्द जोड़ने से अभिप्राय ऐसे नाटक जिनमे नृत्यगीत,वाद्य,ताल तत्व मौजूद हो। 11वीं शताब्दी के पश्चात पूर्वी भारत में संगीत नाटकों का उदय हुआ। पूर्वी भारत में बिहार इन नाटकों की दृष्टि से सम्पन्न है। 11वीं शती में ही रचा गया ज्योतिरीश्वर ठाकुर का वर्णरत्नाकर लोक नाट्यों में संगीत पद्धति का आधार ग्रंथ है जिसमें, गीत, नृत्य, ताल , वाद्य, आदि का वर्णन किया गया है।

असम के इस नवजागरण से मिथिला का गहरा संबंध था।16वीं सदी में काशी, मिथिला, शांतिपुर, नवद्वीप आदि विद्या के केंद्र थे। मिथिला तो विशेष रूप से संगीत विद्या का केंद्र बना हुआ था।[2] कोई आश्चर्य नहीं महापुरुष शंकरदेवकी ब्रजबूली का आधार विद्यापति की पदावली की भाषा है और " महापुरुष शंकरदेव ने अपनेकीर्तन तथा अन्य काव्य की रचना से तत्कालीन आसामी भाषा में की , किन्तु गीतों की रचना ब्रजबुली में की।

## 1.3 वैष्णव नाट्य परंपरा :-

वैष्णव भक्तिधारा में भगवान की लीलाओं का नाटकीय प्रस्तुतीकरण मनोरंजन की वस्तु नहीं, आध्यात्मिक उन्नयन की युक्ति बन गई और उसे वह उच्च भावभूमि मिली जिसके कारण उसे भारतीय जनमानस में अनोखा सम्मान और लोकप्रियता प्राप्त हो सकी। वैष्णव भक्ति के प्रभाव स्वरूप अनेक मंदिरों का निर्माण हुआ उनके बड़े बड़े प्रांगणों में नाट्यप्रदर्शन सरलता से हो सकता था। मंदिरों के पास पर्याप्त धन सम्पदा थी, कीर्तनिए और कथागायक थे। दक्षिण और उड़ीसा के मंदिरों में

[1] शंकरदेव,'ब्रजबुली ग्रंथावली',संपादक लक्ष्मीशंकर गुप्त ,पृष्ठ 19

[2] शंकरदेव,'ब्रजबुली ग्रंथावली',संपादक लक्ष्मीशंकर गुप्त ,पृष्ठ 66

नृत्य प्रस्तुत करने के लिए देवदासियाँ रखी जाती थी , भगवान की मंगल आरती के साथ गायन वादन आवश्यक था ही : इस प्रकार मंदिर संगीत, नृत्य और नाट्य प्रदर्शन तीनों के ही केंद्र बन गए [1]

वैष्णव भक्ति आंदोलन का व्यापक प्रभाव पूर्वोत्तर भारत में भी पड़ा। असम से लेकर मणिपुर और त्रिपुरा की घाटियों में वैष्णव भक्ति की चेतन छाया में कई नाट्य रूपों का प्रादुर्भाव हुआ। इन नाट्य रूपों में सिक्किम का बालन ,असम का अंकिया, भाओना / भावना ,त्रिपुरा का ढब जात्रा तथा मणिपुर की गोड़लीला आदि प्रमुख है।

पूर्वोत्तर भारत के भक्ति संतों कृष्ण को अपना नायक बनाया। रंगमंच पर राम की उपस्थिती कृष्ण की अपेक्षा कम रही। सिक्किम के बालन तथा आसाम के अंकिया नाट में राम और कृष्ण दोनों के जीवन से जुड़ी लीलाओं को प्रस्तुत किया जाता है , जबकी गोड़लीला और ढब जात्रा के केंद्र में सिर्फ कृष्ण है। [2]

उत्तर से दक्षिण और पूर्व पश्चिम तक इस समय जो लोक नाट्य शैली से प्रचलित है। उन सबका उदयकाल 15वीं -16वीं शताब्दी माना जाता है। परंतु इन सबकी प्रेरणा का स्रोत हमारे विचार से महाकवि जयदेव का गीतगोविंद ही है। जिसकी रचना 12वीं शताब्दी में हुई। इस लीला काव्य की लोकप्रियता उस युग में इतनी अधिक थी की यह ग्रंथ स्वयं श्रीकृष्ण की रासलीला प्रदर्शन का मुख्य माध्यम बन गया। देश के विभिन्न भागों में उस युग में गीत-गोविंद के नाट्य प्रदर्शन होते थे। पूरी के मंदिर में आज भी गीत गोविंद के प्रदर्शन की परंपरा है और वहाँ आज भी वेतनभोगी प्रदर्शनकारी मंदिर में गीतगोविंद का प्रदर्शन करते है। गीतगोविंद के यह प्रदर्शन उस समय पूरे देश में होते थे। [3]

इस संबंध में जगदीश चंद्र माथुर का कथन हैकी जयदेव ने न सिर्फ दृश्य प्रबंध का विकास किया , वरन एक नूतन संवाद पद्धति को भी प्रचलित किया। इसमें संलाप प्रधान होते थे। इस पद्धति में सूत्रधार द्वारा मंगलाचार तथा सूचना उसके बाद अन्य पात्रों द्वार ध्रुवपद सहित संलाप। इसमे यह सुविधा थी की जब सूत्रधार स्तुति और सूचना बोधक श्लोकों को बोलता था। तब आगे आने वाला पात्र संलाप के लिए तैयार सकता था। इस अवकाश की जरूरत इसलिए भी थी की हर कथन, गीत

---

[1] अवस्थी,इन्दुजा,'रामलीला परंपरा और शैलियाँ,पृष्ठ 29

[2] भारती,ओमप्रकाश,'पूर्वोत्तर के पारंपरिक/लोक नाट्य',पृष्ठ 2

[3] चौमासा पत्रिका , संपादक कपिला तिवारी , पृष्ठ 20

तथा संलाप को गायन एवं नृत्य के साथ प्रस्तुत किया जा सकता था। इस सुविधा के कारण केरल से आसाम तक सौराष्ट्र से उत्कल तक गीत गोविंद मंदिरों और राजप्रासादों में खेला जाने लगा।[1]

इस प्रकार यह स्पष्ट है की वर्तमान लोक नाट्यों के उदय की पृष्ठभूमि भी जयदेव के गीतगोविंद पर आधारित थी। और इसी नृत्य गायन, संलाप प्रधान शैली से आगे चलकर सभी लोक नाट्यों की रचना हुई। यही कारण है की विभिन्न लोकनाटकों की प्रदर्शन शैली में बहुत सी समानता आज भी विद्यमान है। अन्तः वर्तमान लोक नाट्यों का उदय भी लीला नाटक शैली से ही हुआ । हमारा यह कथन इस तथ्य से भी प्रमाणित होता है की भाषा नाटकों में जो सबसे प्राचीन लोक नाटक उपलब्ध है। वह भी उमापति द्वारा रचित 'पारिजातहरण' लीला नाटक ही है , जो 14 वीं शताब्दी में रचा गया था ।

**कूडियाट्टम :-**

वर्तमान भाषा नाटकों में कूडियाट्टम सबसे प्राचीन है जिसको विकसित करने में केरल नरेश राजा कुलशेखर वर्मा की प्रधान भूमिका थी। कूडियाट्टम शब्द का अर्थ ही मिलाजुला रूप है। कुलशेखर वर्मा ने नाट्य की कई शैलियों को मिलाकर कूडियाट्टम शैली चलाई थी, उसमें कुलशेखर वर्मा ने लोक नाट्योन के चाक्यार और विदूषक का मिश्रण किया तथा स्थानीय भाषा को महत्व देकर उसको नवीन किया। शैली में रचा गया उनका नाटक 'सुभद्रा धनपद 'बहुत प्रसिद्ध व लोकप्रिय है यह नाटक भी लीला नाटक से ही है। इस प्रकार लीला नाटकों की नवीन शैली का प्रारम्भ दक्षिण से ही हुआ। जिसका विकास विभिन्न क्षेत्र में अपने अपने ढंग से हुआ।[2]

जिस समय देश में लोक नाटकों का विकास हो रहा था। उसी समय भारत में मुसलमानी शासन दृढ़ हो रहा था। और उसकी कट्टता से हिन्दू समाज अपने दमित, अपमानित मानकर क्षुभित था और एक ओर निराशा का वातवरण पनप रहा था, जिसकी प्रतिक्रिया स्वरूप देश में कई आंदोलन का सूत्रपात हुआ। इस काल में दक्षिण से कई संत उत्तर में आकार बस गए और उनकी प्रेरणा से जो भक्ति आंदोलन का देशव्यापी रूप खड़ा हुआ। उसने विभिन्न अंचलों में लीला नाटकों की स्थापना में विशेष योगदान दिया। भगवान राम, कृष्ण, नृसिंह आदि के अनेक कथानकों के आधार पर विभिन्न क्षेत्र लीला नाटकों के विभिन्न मंच स्थापित हुए। ऐसे मंचों में असम का अंकिया नाट सबसे प्राचीन लगता है।

---

[1] शर्मा,रामविलास,'हिन्दी साहित्य की भूमिका', पृष्ठ 198

[2] वरदापाण्डे,एम. एल.,'कृष्ण थिएटर इन इंडिया',पृष्ठ 55

**भागवत मेल :-**

तमिलनाडु के लोकनाट्यों में भागवत मेल लीला नाटकों की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। कहा जाता है की इसकी परंपरा 11वीं शताब्दी तक जाती है, परंतु वास्तव में इसका उत्कर्ष तीर्थ नारायण योगी के द्वारा हुआ जिसने स्वयं 'कृष्ण लीलतरिंगनी' की रचना की थी। इसने अपनी मान्यता के अनुसार इस मंच को संगीत, नृत्य और अभिनय की त्रिवेणी के रूप में सजाया। भागवत मेल प्राचीन नाट्य परंपरा का प्रांतीय भाषाओं में पुनरुत्थान है । कला के उच्चतर रूपों में विश्वास और रुचि रखने वाले महत्वाकांक्षी आधुनिक नर्तकों को इस कला में उच्चस्तरीय संगीत अभिनय और 'नन्द्वू वंगम' का खजाना मिल सकता है।

**दशावतार :-**

भगवान विष्णु के दस अवतारों की लीला को अपनी कथावस्तु बनाने वाला दशावतार महाराष्ट्र का दूसरा ऐसा नाटक है जिसमें साधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग होता है। दशावतार लीला में यह आवश्यक नहीं की विष्णु के सभी अवतारों की लीला दिखाई जाती है। प्रायः पशुराम, बुद्ध व कल्कि अवतारों का तो उल्लेख भाग ही होता है। राम और कृष्ण की लीलाओं को अन्य की अपेक्षा ज्यादा महत्व मिला, इन लीलाओं में रोचकता बढ़ाने के लिए विदूषक मंच पर विशेष रूप रहता है।

**ललित :-**

जात्रा नाटकों में मिलती जुलती एक धार्मिक लोक नाटकों की परंपरा 'ललित' नाम से बड़ी लोकप्रिय रही है। जो अब धीरे धीरे समाप्त हो रही है। ललित नाटकों का प्रारम्भ महाराष्ट्र में सन 1890-95 के आस-पास हुआ था। आनंद कुमार स्वामी ललित की व्युत्पति लीला से ही मानते हैं। इस दृष्टि से यह परंपरा लीला नाटक की कड़ी है। महाराष्ट्र का मंच होते हुए भी इस मंच की भाषा उत्तर भारत की लोक प्रचलित हिन्दी है। ललित का संबंध भारूड़ शैली से है। कहीं हिन्दी, कहीं मराठी, कहीं मिश्रित और कहीं एकदम लोकगीतों का समावेश इस मंच की विशेषता है।

**रासलीला :-**

शास्त्रीय रंगमंच्के विघटन के बाद मध्य युग में भक्ति आन्दोलन के फल स्वरूप, देश में नाट्य परंपरा का जो दूसरा चरण शुरू है उसमें उभरने वाले नाट्य रूपों में, विशेषकर हिन्दी भाषी क्षेत्र में रासलीला कई दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

वैष्णव पुराणों पर दृष्टिपात करते हैं तब हमें भगवान कृष्ण की रासलीला के विविध वर्णन प्रचुर मात्र में उपलब्ध होते हैं। पुराणों के साथ -साथ ( हल्लीसक क्रीडा )का उल्लेख मिलता है। संस्कृत के साथ साथ भारत की सभी भाषाओं के उस वाङ्गमय में जहाँ कृष्ण के चरित्र का उल्लेख है वहाँ उनके रास का भी वर्णन विशेष रूप से है। विद्वानों का मत है की कृष्ण द्वारा प्रारम्भ किया गया यह नृत्य कालांतर में पूरे जन साहित्य का आधार था। आज भी ब्रज और मणिपुर में श्रीकृष्ण को आधार मानकर रास की जो परंपरा प्रचलित है वह कृष्ण की इसी पौराणिक परंपरा का परिवर्ती रूप है।[1] मध्यकाल में संतों ने ब्रज की यात्रा की तथा यहाँ की नृत्य, गायन शैली को अपने क्षेत्र में नाट्य रूपों में प्रयोग किया। वैष्णव नाट्य परंपरा में ब्रज की रासलीला का प्रमुख स्थान है।

भारत का उत्तरी भाग खासकर पूर्वाञ्चल सांस्कृतिक गतिविधियों का केंद्र रहा। वैष्णव संप्रदाय के जनक चैतन्यदेव का जन्म बंगाल में ही हुआ। असम में शंकरदेव वैष्णव संप्रदाय के पुरोधा हुए। उड़ीसा ने जयदेव की गीतगोविंद की परंपरा को संजोय रखा तो बिहार में वैष्णव लोक नाटकों का जन्म हुआ।

अकेले बिहार में ही कीर्तनियाँ, बिदापत , नारदी गायन, रासलीला, तथा पूर्वी बिहार में जात्रा जैसी नाट्य परम्पराएँ जीवित है। यही कारण है की बिहार वैष्णव आंदोलन में मुख्य भूमिका निभाता है ।

सांस्कृतिक दृष्टिकोण से बिहार, बंगाल, असम, सिक्किम, अरुणाचल, मणिपुर, त्रिपुरा, नागालैंड आदि राज्यों के क्षेत्र को पूर्वाञ्चल कहा जाता है। प्राचीन काल से ही पूर्वाञ्चल में लोक नाट्यों की सदृढ़ परंपरा रही है, जिसमें भाषिक भिन्नता रहते हुए, मौलिक प्रदर्शन में शैली में कहीं न कहीं समानता है या एक दूसरे से प्रभावित है। [2]

13वीं सदी में राजदरबारों में नाट्यकला को प्रोत्साहन मिला। 14वीं शताब्दी में मिथिला में कर्णाट्वंशी शासक हरीसिंह देव ने नाट्यकलाओं और नाटककारों को पश्रय दिया। उनके ही दरबार में ज्योतिरीश्वर ठाकुर ने 'धूर्तसमागम' और 'पारिजातरण' नाटक की रचना की। कीर्तनियाँ नाट्य परंपरा में पारिजातहरण बहुत ही लोकप्रिय हुआ, जिसका मंचन दक्षिण भारत के राजदरबारों में हुआ तथा अपने समकालीन और परवर्ती नाट्यरुपों को प्रभावित भी किया। लेकीन दरबार के साथ ही लोक में

---

[1] अग्रवाल,नारायण,'ब्रज का रास रंगमंच,'पृष्ठ 121

[2] भारती,ओमप्रकाश,'बिहार के पारंपरिक नाट्य',पृष्ठ 26

भी इसके प्रदर्शन होते रहें हैं।[1] 15वीं शताब्दी तक भक्ति आंदोलन का प्रसार उत्तर और पूर्व भारत तक हो चुका था। ब्रजमंडल देश के वैष्णव भक्ति का केंद्र बना। भक्तिकाल में कृष्ण तथा राम की लीलाओं को गीत एवं नृत्य के माध्यम से प्रस्तुत किया गया। यह वही समय था जब पूर्वाञ्चल के कई संतों ने ब्रजमंङ्ल का दौरा किया जिसमें शंकरदेव तथा चैतन्य प्रमुख थे। इन्होने अपने क्षेत्र में जाकर वैष्णव मत का प्रचार किया तथा पूर्वाञ्चल एवं पूर्वोत्तर भारत में भावना, ढब जात्रा, गोड़ लीला, शुमाङ्ग लीला, जात्रा आदि पारंपरिक नाट्य अस्तित्व में आए।

पूर्वोत्तर भारत के इतिहास पर गौर करे तो यह राज्य प्राचीन काल से ही व्यापक गतिविधियों का केंद्र रहा। पूर्वाञ्चल के बारे में अपना मत प्रकट करते हुए विश्वेशर जी कहते हैं:

"सरयू, सोन से बंगसागर तक तथा पूरी से हिमगिरि तक, तथा नेपाल उपत्यका से असम अधिपत्य का तक जो भी जंगल, पहाड़, जल स्थल, भाव, विचार परंपरा प्रचलित है, अपने प्रकृति परिवेश से एक विलक्षण पूर्वाञ्चालिय परिधि प्रस्तुत करता हैं"।[2]

इन राज्यों में आदिम संस्कृति की प्रधानता है जहाँ बाहरी या सभ्य समाज की परंपरा और संस्कृति का प्रभाव कम ही पड़ा। लेकीन पूर्वाञ्चालिय संस्कृति से हम आदिम 'जनजातीय संस्कृति' को अलग नहीं मान सकते, क्योंकी पूर्वाञ्चल के अन्य भागों में आदिवासी जनजाति रहती है। इस प्रकार पूर्वाञ्चल संस्कृति के निर्माता आदिम तथा सभ्य दोनों समाज के लोग थे। एक ही सांझा संस्कृति से कारण लोक उत्सवों में भी समानता है। सम्पूर्ण पूर्वाञ्चल किसी न किसी नदी के कीनारे बसा हुआ है अतः नदियों को लेकर भी एक सांझी संस्कृति यहाँ मिलती है। कहा जा सकता है की भाषिक विविधता होने के बावजूद इन राज्यों में सांस्कृतिक एकता है। यह कारण उस पृष्ठभूमि को तैयार करते हैं, जिनसे एक साथ सम्पूर्ण पूर्वाञ्चल में वैष्णव धर्म पैर पसार सका तथा कई लोक नाट्यों का प्रादुर्भाव हुआ। वैष्णव आंदोलन की पृष्ठभूमि तथा उसके प्रचार में इन लोक नाटकों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। इन सभी राज्यों में बिहार सारथी की भूमिका निभाता है। डॉ विलियम स्मिथ ने मिथिला बिहार की एतिहासिकता पर लिखते हैं :

"Drama was being written in mithila in the early 14th centuary as can be seen in such a play, the 'dhurttsamagama' of jyotirishvara from about 1325. This makes it not onle the oldesht Maithili drama but perhaps even the oldest-

---

[1] भारती,ओमप्रकाश,'बिहार के पारंपरिक नाट्य',पृष्ठ 27

[2] सिंह,विश्वेश्वर,'पूर्वाञ्चालिय नाटक और रंगमंच', पृष्ठ 56

varnnacular work of northan india .( natkam muktisadhkam, edit by budheshwar saikia, shankardeva's dramas : the golden mean – article written by william smith, university of stockhom )[1]

मिथिला में नाटक लिखने की शुरुआत 14वीं शताब्दी में हुई । ज्योतिरीश्वर ठाकुर का धूर्तसमागम 1325 ईस्वी में लिखा गया ऐसा नाटक है जो ना केवल मिथिला अपितु सम्पूर्ण उत्तर भारत में लिखा गया पहला नाटक है ।

बिहार कला एवं कलाकारों का मुख्य केंद्र रहा है, महाजनपद काल में अंग, मिथिला और मगध कलाकारों का संरक्षण स्थल था । रामायण और महाभारत के अन्तः साक्ष्य के अनुसार यहाँ के आंजनों का गणतन्त्र से गहरा संवाद था । अतः लोककला रूपों को गणतन्त्र ने पर्याप्त संरक्षण दिया ।

इतिहास में देखें तो तुर्क- पठान आधिपत्य हो जाने पर मिथिला अपने सांस्कृतिक मार्ग पर आगे बढ़ता रहा । इस समय में मिथिला में जो शासक थे वो कर्णाट्वंशी थे । लेकीन उन्होने संस्कृत के अलावा मैथिली, भाषा को भी प्रोत्साहित किया ।[2]

मिथिला गेय काव्य का केंद्र था । उमापति ने अपने नाटक 'पारिजातहरण' में मैथिली में ही गीत लिखे हैं । ज्योतिरीश्वर ने वर्णरत्नाकर में 'लोरिक' नाम के लोकगीतों का उल्लेख किया है, जो मिथिला में आज भी लोकप्रिय है।[3] मिथिला में जो दर्शन का विकास हुआ और साहित्य में जो नई धारा प्रवाहित हुई उसने आसपास के प्रदेशों को प्रभावित किया । राधाकृष्णन चौधरी ने डॉ॰दिनेशचन्द्र का हवाला दिया जिनका विचार था की '**बंगाल को अपनी सभ्यता मिथिला से प्राप्त हुई**'।[4]

मिथिला के नाटकों और संगीत का प्रभाव बंगाल, उड़ीसा, असम और पश्चिम में हिन्दी प्रदेश के शेष भाग पर काफी हुआ । इस प्रभाव और विस्तार का प्रमाण यह है की विद्यापति की रचनाओं की पाण्डुलिपियों नेपाल, बंगाल आदि प्रदेशों में भी मिलती है ।[5]

---

[1] Smith,William,'natkam muktisadhkam, edit by budheshwar saikia, shankardeva's dramas : the golden mean'page no 18

[2] राधाकृष्ण चौधरी,' बिहार का इतिहास', पृष्ठ 141

[3] ठाकुर,ज्योतिरीश्वर,'वर्णरत्नाकर',बिहार

[4] सेन,दिनेशचन्द्र,वही पृष्ठ 1401-141

[5] शर्मा,रामविलास,'हिन्दी साहित्य की भूमिका',पृष्ठ 190

सर्वप्रथम जयदेव का गीतगोविंद तत्पश्चात विद्यापति वैष्णव मत को प्रचारित करने में मील का पत्थर साबित हुए। गीतगोविंद गीतिनाट्य है। विभिन्न चरित्रों के मध्य जैसे श्रीकृष्ण, राधा और सखियों के बीच यत्र तत्र गेय संवाद है। श्री कृष्ण कीर्तन भी एक लोकनाट्य है। गीतगोविंद में राधाकृष्ण के लौकिक प्रेम या मिलन की कथावस्तु के चारों और बुने गए प्रगीतों का सतत क्रम है, जो मुक्तक होते हुए भी कथात्मक भी है। उसी तरह विद्यापति के कृष्ण विषयक पदावलियाँ सम्पूर्ण पूर्वी भारत में गायी जाती है।

वैष्णव आधारित कथानकों में बिहार के कीर्तनियाँ तथा बिदापत नाच लोकनाट्य है। कीर्तनियाँ देशव्यापी सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का परिणाम था। कीर्तनियाँ के कथानकों में उषाहरण, कृष्णकेलिमला, श्रीकृष्ण जन्मरहस्य, माहावानन्द, गौरी स्वयंवर कृष्ण विषयक थे।[1]कीर्तनियाँ नाट्य परंपरा में उमापति ने पारिजातहरण नाटक की रचना की। यह नाटक भाषा और शिल्प के स्तर पर न केवल मिथिला बल्कि पूर्वाञ्चल भारत के कई रूपों को प्रभावित किया। पारिजातहरण का कथानक हरिवंशपुराण (अध्याय 124 -135), विष्णु पुराण( अध्याय 5, श्लोक 30 - 31 ) और श्रीमदभागवत गीता के पारिजात पुष्प के लिए कृष्ण और इन्द्र के बीच हुए विवाद और युद्ध के प्रसंग पर आधारित है। त्रिपुरा का 'ढब जात्रा', बंगाल की 'जात्रा', बिदापत में 'पारिजातहरण' का कथानक कई दिनों तक मंचित होता रहा।

मध्यकालीन वैष्णव भक्ति आंदोलन की पृष्ठभूमि में एक नाट्य रूप सामने आता है- **बिदापत**। बिदापत में आज भी गीतगोविंद की नाच गान पद्धति तथा ब्रज की रास परमपरा के अवशेष देखे जा सकते हैं जगदीश चंद्र माथुर ने बिदापत को विद्यापति से प्रेरित माना है।[2] बिदापत के पूर्वरंग में विद्यापति की पदावलियाँ गाई जाती है। विद्यापति के राधा – कृष्ण विषयक पदावली में कथा तत्व जुडने से बिदापत जैसे नाट्य रूप अस्तित्व में आया।

बिदापत मंच पर कृष्ण के जीवन से जुड़े कथानकों या लीलाओं को प्रदर्शित किया जाता है। 'बंसीलीला', 'नागलीला', 'मानलीला' आदि प्रमुखता से प्रस्तुत होते हैं। कभी बिदापत मंच पर 'पारिजातहरण' और 'कालियदमन' का मंचन भी होता है।

वैष्णव भक्ति नाट्य परंपरा की सशक्त नाट्य परंपरा हमें बंगाल में मिलती है जहाँ वैष्णव भक्ति आंदोलन के पुरोधा चैतन्य ने वैष्णव भक्ति का प्रचार प्रसार किया। यहाँ का प्रसिद्ध लोक नाट्य :

---

[1] चौधरी,राधाकृष्णन,'द ड्रमैटिक ट्रेडिशन ऑफ मिथिला: द बिहार थिएटर जनरल, पृष्ठ 40-41

[2] माथुर,जगदीशचंद्र,'परम्पराशील नाट्य', पृष्ठ 77

## जात्रा

मध्ययुगीन बंगाल में लोक नाटक का एक रूप विकसित हुआ, जो 'कृष्ण- यात्रा' जात्रा के नाम से जाना जाता है। यह संगीत नाटक का एक रूप है। इसके सभी संवाद कंठ-संगीत में हैं। कृष्ण, राधा और दो सेविकाओं के चरित्र इसमें थे। जयदेव का गीतगोविंद बंगाल के वैष्णवों में अत्यधिक लोकप्रिय था। अतः यह स्वाभाविक ही है कि लोक नाटक का रूप जयदेव के गीतगोविंद पर आधारित है।[1]

पंद्रहवीं शताब्दी में भक्ति आंदोलन का बंगाल के जनजीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ा। भक्त देवताकी आराधना के लिए जुलूसों में नाचते-गाते थे। इसमें धार्मिक विषयक कथानक मंचित होते हैं। चैतन्य देव इसके प्रेणता माने जाते हैं। वैष्णव मत को प्रचारित करने में जात्रा का अधिक प्रयोग हुआ। इसमें कीर्तन, नृत्य, गीत शैली का प्रादुर्भाव होने के कारण समृद्ध हुआ।[2]

## अंकिया

अंकिया आसाम का जनप्रिय पारंपरिक नाट्य रूप है। इसे वैष्णव नाटक भी कहा जाता है। इसे आदि प्रणेता प्रसिद्ध वैष्णव संत शंकर देव को माना जाता है। शंकर देव ने अपने शिष्यों सहित ब्रजमंडलकी यात्रा की। वहाँ उन्होने कृष्ण के जीवन पर आधारित लीलाओं को देखा वहाँ से वह पूर्वाञ्चल भारत की यात्रा पर गए। वहाँ उन्होने बंगाल में जात्रा तथा बिहार में कीर्तनियाँ ( उमापति रहित पारिजातहरण ) आदि देख असम लौटने के बाद अनुभव से ब्रजबूलीकी रचना की।[3]

शंकरदेव कालीन आसाम राजनैतिक दृष्टि से पूर्णतः असुरक्षा, अमर्यादित, आक्रमण के अमानवीय व्यवहार का क्षेत्र बना हुआ था। अतः विखंडित और हताश राजनैतिक स्थिति ने समानी जनता को शांति और सुरक्षा के लिए मानवतावादी शंकरी भक्ति के प्राप्तिके योग्य वातावरण तैयार करने में सहयोग दिया। शंकरदेव ने वैष्णव मत के द्वारा वहाँ की त्रस्त जनता को एक मार्ग दिखाया। घोर कर्मकांडी, तंत्र साधना से युक्त कामरूप के लिए वैष्णव पाठ एक विकल्प के तौर पर उभरा व जातिवादी रूढ़ियों को तोड़ने के कारण भी आसाम में यह व्यापक तौर पर प्रसारित हुआ।

---

[1] वात्स्यायन,कपिला,'गीतगोविंद',पृष्ठ 28

[2] भारती,ओमप्रकाश,'लोकनाट्य विश्वकोष', पृष्ठ 74-75

[3] भारती,ओमप्रकाश,'असम का पारंपरिक नाट्य : अंकिया',पृष्ठ 11

पूर्वोत्तर भारत के संतों ने कृष्ण को अपना नायक बनाया। जिसमें मणिपुर के लोक नाट्य भी शामिल है।

## गोड़ लीला

मणिपुर की गोड़ लीला के केंद्र में कृष्ण ही है। यह एक लोकनृत्य है तथा इसका प्रदर्शन वैष्णव धर्म के प्रचार-प्रसार के उद्देश्य से आरंभ हुआ। गौरलीला का स्वरूप दो सांस्कृतिक धाराओं के संयोग से निर्मित हुआ। इनमें से एक मैते परंपरा थी तो दूसरी गौड़िय वैष्णव चिंतन धारा। यह माना जाता है की सन 1470 में कीपाम्बा महाराज के काल में वैष्णव उपासना शुरू हुई थी। मणिपुर राजनीतिक दृष्टि से काफी अस्थिर रहा। 100 वर्षों में 20 राजाओं ने शासन किया इन वर्षों में यहाँ कई कला रूपों का जन्म हुआ। गरीबनिवास के समय रमानन्दी ने वैष्णव संप्रदाय को राजधर्म घोषित किया। इस समय मणिपुर में गौड़िय संप्रदाय के अनुनायी भी थे। भाग्यचन्द्र के काल में यहाँ वैष्णव धर्म को प्रश्रय मिला। गौडलीला में मुख्यतः चैतन्यदेव की बाल लीलाएं अभिनीत की जाती है और गौड़ लीला के परयोक्ताओं ने चैतन्य देव ने चैतन्यदेव को कृष्ण रूप तथा ईश्वरीय गुण से स्थापित करने की कोशिश की है।

## शुमाङ्ग लीला

मणिपुर का ही एक और लोक नाट्य है शुमाङ्ग लीला। शुमाङ्ग अर्थात आँगन, आँगन में होने वाली लीला। यह एक सामाजिक लोक नाट्य है। इष्ट कला रूपों में प्रस्तुत विषय वैष्णव भक्ति से जुड़े हैं, जिसका आधार, रामायण, महाभारत, तथा अन्य पौराणिक आख्यान है। शुमाङ्ग लीला के कथानक सामाजिक संदर्भों से जुड़े होते हैं।

## ढब जात्रा

पूर्वोत्तर का एक राज्य है **त्रिपुरा**। त्रिपुरा भी राजनीतिक, सांस्कृतिक स्थितियों में काफी उतार चढ़ाव वाला रहा है। वैष्णव लोक नाट्य की परंपरा यहाँ भी रही जिसमें ढब जात्रा प्रमुख है। ढब जात्रा कृष्ण विषयक रंगमंचकी देन है। वैष्णव भक्ति की चेतना छाया में इन नाट्य रूपों का जन्म हुआ।

भारत के इतिहास में 'मध्यकाल' व्यापक बदलाव का संकेत लेकर आता है। एक ऐसे वैचारिक आंदोलन का जन्म इस युग में होता है जिसने कई सांस्कृतिक धारणाओं को जन्म दिया। इससे निकली शाखाओं ने सामाजिक परिवर्तन की नई बयार को बहाया। राजनीतिक उथल पुथल से

त्रस्त जनता के लिए यह आंदोलन विकल्प के तौर पर उभरा। जनता ने आशाहीन दृष्टि से अपने अतीत के नायकों को वर्तमान में स्थापित किया। संतों ने ईश्वर का मानविकीकरण कर उसे जनमानस के मन में बसाया।

जनमानस ईश्वर की लीलाओं को देखकर स्वयम की पीड़ा भुला जाता है वह उसे अपने जीवन के अनुभव के रूप में स्वीकार्य करता है, वह ईश्वर को कष्टहरता के रूप में स्वीकार्य करता है। इसी आंदोलन की देन वैष्णव आंदोलन जिसने दक्षिण से होते हुए उत्तर तथा पूर्व में पैर पसारा। कर्मकांड, जातिवाद के विरुद्ध प्रचारित इस मत को भारतीय जनमानस ने खुली बाँहों से स्वागत किया।

ऊपर दिये गए तथ्यों के आधार पर निम्नलिखित पक्ष हमारे सामने आते हैं - भक्ति आंदोलन में अपने विचारों को जनमानस तक पहुंचाने के लिए संतों ने लोक नाट्यों का सहारा लिया साथ ही कई नाट्य रूपों को भी जन्म दिया।

* दक्षिण से पूर्वी भारत के परंपरागत नाट्यों में एक ही पौराणिक कथानकों का प्रयोग हुआ है। 'नृसिंहवतार' ,'श्रीकृष्णलीला', 'रामचरित', महाभारत के दृश्य, यह कथाएँ आसाम से लेकर केरला तक के नाट्यों में मिलती है।
* 15वीं शताब्दी में उत्पन्न भक्ति आंदोलन के पश्चात ब्रजमंडल केंद्र बना। उस समय ब्रज में रास नृत्य, गीत, अभिनय की परंपरा थी। विभिन्न क्षेत्र से आए वैष्णव संतों ने इन रूपों को देखा तथा अपने क्षेत्र में जाकर नए नाट्य रूपों को जन्म दिया। असाम का अंकिया नाट, बंगाल की जात्रा, मणिपुर की गौर लीला तथा शुमाङ्ग लीला , त्रिपुरा की ढब जात्रा इसी वैष्णव आंदोलन की देन है।
* मध्यकाल में विष्णु के दो अवतार राम तथा कृष्ण की लीलाओं का व्यापक प्रसार हुआ। जिससे लीला नाटकों का जन्म हुआ। मध्यकाल का समाज व्यापक परिवर्तन से गुजर रहा था । जातिवाद, कर्मकांड, आर्थिक विपन्नता से त्रस्त समाज इन लीला नाटकों को देखकर सुख प्राप्त करती थी । संतों ने इन नाट्य रूपों के माध्यम से कृष्ण तथा राम की लीलाओं को जनमानस तक पहुंचाया।
* एक ही विचारधारा के नीचे जन्में इन लोक नाट्यों में काफी समानतायें मिलती है। अभिनेता को 'नटुआ', निर्देशक को 'मुलगाईन' तथा ग्रीन रूम को 'साजघर' कहा जाता है। सभी लोक नाट्य रूपों में स्थानीय वाद्य यंत्रों का प्रयोग हुआ है। जबकी मृदंग लगभग सभी लोक नाट्य रूपों में प्रयोग होता है।
* विदूषक की उपस्थिती लगभग सभी नाटकों में बराबर है।

* इन सभी नाट्य शैलियों में सूत्रधार किसी न किसी रूप में विशिष्ट भूमिका का सम्पादन करता है। कहीं समाज गायन करके लीला का नियंत्रण करता हैं। कहीं नाटक के पात्रों का परिचय देता है। कहीं लीला प्रसंगों की व्याख्या करता है।
* मुखौटे का प्रयोग इन सभी लीला नाटकों में होता है। इन मुखौटों की अपनी क्षैत्रिय विशेषता है।
* संतों में 'संगीत' को ईश्वर प्राप्ति का प्रमुख माध्यम माना गया है। अतः हमारे सभी लीला नाटक नृत्य और संगीत से जुड़े है। स्थानीय तथा शास्त्रीय दोनों रागों का समावेश यहाँ होता है। जगदीश चंद्र माथुर ने इन्हे 'संगीतक' कहा है। गीत, वाद्य, नृत्य, रंगशाला तथा नट-नटी जिस प्रदर्शन में हो वो संगीतक है हमारे उक्त लीला नाटकों में यह सभी तत्व मौजूद है।

पूर्वाञ्चल भारत में जब राष्ट्रवाद की पूर्वपीठिका तैयार हो रही थी तो इसकी भावनात्मक और सामाजिक पृस्ठभूमि वहाँ के लोक गायक तैयार कर रहे थे। भक्ति आंदोलन के बाद यही एक समय था जब मानव को श्रेष्ठ बताया गया। मानवतावाद भक्ति आंदोलन की सबसे बड़ी उपलब्धि थी।[1]

कहा जा सकता है की लोक जनमानस में प्रचलित लोक कथाओं का अपने आंदोलन के साथ समन्वय संतों ने किया। जिस प्रकार राम लोकजनमानस में पहले से मौजूद थे। मिथिला का लवहेर-कुशेर तथा कुषान गान प्राचीन काल से ही राम कथा के रूप में मौजूद है। उसी तरह कृष्ण कई उपनामों के साथ लोक में प्रचलित थे। वैष्णव आंदोलन ने इन ईश्वरीय चरित्रों का समाजीकीकरण किया तथा आलौकिक से लौकिक धरातल पर उनको स्थापित किया। लोक में इन दो रूपों के पूर्व प्रचलित होने के कारण ही वैष्णव आंदोलन सम्पूर्ण देश में फ़ैल सका तथा राष्ट्र एक सांस्कृतिक सूत्र में जुड़ा।

[1] भारती,'ओमप्रकाश,'लोकायन-लोककला रूपों पर एकाग्र',पृष्ठ 76

# अध्याय 5

# बिदापत नाच का वैष्णव भक्तिकालीन अन्य नाट्य परम्पराओं के साथ अन्त:संबंध का शोधपरक मूल्यांकन

## 5.बिदापत  नाच का वैष्णव भक्तिकालीन अन्य नाट्य परम्पराओं के साथ अन्तःसंबंध का शोधपरक मूल्यांकन

भक्ति आंदोलन मूलतः सामाजिक चेतना का आंदोलन था। इस आंदोलन ने सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में नई – नई विधाओं को जन्म दिया। नई विचारधारों का विकास इसी आंदोलन से हुआ।

भक्तिकाव्य की सगुण शाखा के अंतर्गत वैष्णव भक्ति ने लगभग पूर्वी भारत तथा दक्षिण भरत के सभी राज्यों को प्रभावित किया तथा नाट्य रूपों को जन्म दिया। वैष्णव विचारधारा वर्णवाद, कर्मकांड के विरुद्ध चलती है। जिसके केंद्र में मानवीय ईश्वर है। लौकिक ईश्वर की कल्पना वैष्णव आंदोलन कर्ता है। तथा राम और कृष्ण की कथाओं को देश के हर कोने में संतों ने पहुंचाई। वैष्णव भक्ति ने भाषायी विविधता के बावजूद राष्ट्र को एकसांस्कृतिक एकसूत्र में बांधा। ब्रज जोकी कृष्ण का केंद्र था तो अयोध्या राम नागरी। ब्रज से रासलीला तथा अयोध्या से रामलीला का जन्म हुआ। हजारी प्रसाद द्वेदी का कथन है की " भगवान भक्तों पर अनुग्रह करने की इच्छा से अपनी लीला का विस्तार करने के उद्देश्य से प्रकट होते हैं"।

राम का चरित्र भारतीय जनमानस में एक आदर्श चरित्र के रूप में है जिसके चरित्र स्वरूप की इच्छा हर घर में होती है। तुलसी का यह राम जो भारतीय लोकमानस के मन में बस गया उसका उदात्त चरित्र उसकी जीवन कथा भारतीय जीवन की आदर्श कथा बनी। उसी प्रकार कृष्ण भी अपने चमत्कारिक प्रदर्शन के साथ ही एक साधारण युवक की तरह लीला करते है। राधा के संग उनका प्रेम-प्रसंग लोकमानस में बहुत ही प्रचलित हुआ। मध्यकाल का जनमानस इन चरित्रों का अनुकरण करना चाहता है।

राम और कृष्ण भारतीय संस्कृति के संदर्भ में सदियों से महत्वपूर्ण प्रेरणा स्रोत एवंकलात्मक संरचनाओं के केंद्र बिन्दु रहे। प्राचीन साहित्य में बालीवध और कंसवध का उल्लेख मिलता है। इन महचारितों ने भारतीय जीवन को अपनी लीलाओं के माध्यम से अनुरंजित तथा अनुशासित किया। राम नगर और मथुरा की रामलीलायेँ एवं ब्रज वृन्दावन, मणिपुर की रासलीलाएँ भक्ति आंदोलन से जुड़कर भरत की अनेक जनपदीय शैली में विकसित हुई। पूर्वाञ्चल का कीर्तनियाँ, अंकिया(आसाम), जात्रा(बंगाल), गोपलीला (उड़ीसा), भागवत मेल (तमिलनाडु), दशावतार(महाराष्ट्र) आदि इसके प्रमाण है।

- लीला नाटक विष्णु के अवतार रूपों को एक के सम्पूर्ण आदर्श और अनुकरणीय चरित्र के रूप में विकसित करते है। ये लीला नाट्य राम और कृष्ण की कथाओं को समग्र विकसित करते है।
- जगदीशचन्द्र माथुर लीला नाटकों के माध्यम से सांस्कृतिक एकता को चिन्हित करते हुए लिखते है की " दक्षिण और पूर्वी भारत के परंपरागत नाटयों में एक ही प्रकार के कथानकों का प्रयोग हुआ है। नृसिंहवतार, श्रीकृष्णलीला, रामचरित, महाभारत के दृश्य ये कथाएँ आसाम से लेकर केरल तक सभी नाट्य रूपों में मिलती है"। [1]

**मंच :-**

बंगाल की जात्रा का नटमंडप, असम का अंकिया तथा भाओना घर, मिथिला का कीर्तनियाँ का देव प्रांगण तथा बिदापत का लोक आँगन रंगस्थली का काम कर्ता है।

**सूत्रधार :-**

सूत्रधार शास्त्रीय रंगमंचसे उत्पन्न पात्र है जिसकी चर्चा भरत के नाट्यशास्त्र में हुई है। भारत के सभी लोक नाट्यों में सूत्रधार की मुख्य भूमिका रहती है। वैष्णव नाट्य परंपरा में सूत्रधार प्रायः नृत्य, गीत, अभिनय और संगीत में निपुण होता है। वस्तुतः वह नाटक के चरित्रों और दृश्यों के बीच कड़ी का काम करता है। यही कार्य बिदापत में बिकटा होता है। कीर्तनियाँ में नायक ही सूत्रधार होता है। शास्त्रीय रंगमंचके विपरीत लगभग सभी वैष्णव लोकनाट्यों मणिपुर की गौडलीला, गोष्ठलीला, शुमाङ्ग लीला, त्रिपुरा की 'ढब जात्रा, बंगाल की जात्रा, आसाम का अंकिया नाट तथा भाओना , बिहार का कीर्तनियाँ तथा बिदापत।

**पात्र :-**

इन सभी लोकनाट्यों में स्त्री पात्र पुरुष ही करते है। जात्रा के वर्तमान व्यवसायिक स्वरूप के कारण उसमें स्त्रियॉं का प्रवेश हुआ पर रानी की प्रथा अभी भी है। सभी वैष्णव नाट्यों में मूलतः छः से सात कलाकार होते हैं। सूत्रधार ही अभिनेता बन जाता है। बिदापत में बिकटा ही कृष्ण की भूमिका निभाता है।

**वेष-भूषा :-**

---

[1] माथुर,जगदीशचन्द्र,'परम्पराशील नाट्य', पृष्ठ 6

वैष्णव लोक-नाटकों में पात्रों की वेषभूषा पौराणिक होती है। धार्मिक नाट्य होने के कारण अंकिया नाट तथा मणिपुर की गौड़ लीला, शुमाङ्ग लीला में कृष्ण मथुर पंख बांसुरी आदि के साथ एतिहासिक पौराणिक वेषभूषा में आते है। बिदापत ,कीर्तनियाँ,जात्रा सामाजिक नाटक है। बिदापत का बिकटा साधारण पजामें में दिखाता है। सामाजिक नाटक में दैनिक जीवन के वस्त्रों को ही प्रयोग में लाया जाता है।

**रूप सज्जा :-**

रूप सज्जा में सिंदूर, काजल, खड़िया, गेरू का प्रयोग पूर्वञ्चल के सभी वैष्णव नाट्य रूपों में होता है। यह कलाकार स्वयं अपनी रूप सज्जा में अभ्यस्त होते हैं।

अंकिया, बिदापत तथा कीर्तनियाँ में ही ग्रीन रूम को साजघर कहा जाता है।

**नृत्य तथा संगीत :-**

लीला नाटकों की प्रमुख विशेष संगीत थी। संतों ने गीत को ईश्वर प्राप्ति का प्रमुख माध्यम माना है। अतः हमारे सभी लीला नाटक नृत्य तथा संगीत से जुड़े है। इसमें स्थानीय लोक संगीत के साथ राग – रागनियों को गाया जाता है। गीत तथा नृत्य के समावेश के कारण ही माथुर उन्हे संगीतक की संज्ञा देता है।

- **वाद्य:-** वैष्णव नाट्य रूपों में मृदंग, पखावज झालर आदि का प्रयोग होता है। बिहार में ढोलक का प्रचालन है। पखावज मूलतः कर्नाटक का वाद्य यंत्र है जो कर्णाटवंशी राजा के काल में पूर्वी भरत में आया।

दरभंगा, मिथिला, गौड़, कामरूप तथा कलिंग संगीत एवं नृत्य के प्रमुख केंद्र थे। संगीत के सहयोग से ही वैष्णव मत का प्रचार हुआ और वैष्णव मत की प्रेरणा से मणिपुर जैसे आर्येत्तर भाषा का विकास हुआ। जयदेव के गीतगोविंद तथा विद्यापति की पदावलियों में वसंत रास है, जो मणिपुर के लोक नाट्यों में भी वसंत रास के ही पद गाये जाते है।

**भाषा :-**

ब्रज से असम के अंकिया नाट तक लगभग सभी वैष्णव नाट्यों में एक भाषा का प्रयोग हुआ है, जिसे ब्रजबूली कहा गया है। मूलतः असम के अंकिया नाट तथा बिहार के कीर्तनियाँ नाट में ब्रजबूली में पद गाये जाते है।

ब्रजबूली किसी विशिष्ट प्रदेश अथवा भारतीय जनता के विशिष्ट भाग की बोलचाल की भाषा नहीं थी। वह तत्कालीन परिस्थिति में उपजी एक साहित्यिक भाषा थी, जिसे प्रादेशिक भाषाओं की परंपरा ने अपना विशिष्ट ओज और सौन्दर्य प्रदान कर दिया था। इस भाषा के प्रणेता वैष्णव संत ही थे। यह सपष्ट हो जाना चाहिए की ब्रजबूली से हमें ब्रज भाषा का भ्रम न हो जाए। ब्रजभाषा पश्चिमी हिन्दी की एक बोली का नाम है, जो मथुरा के आस पास बोली जाती है। लेकीन ब्रजबूली की विशेषता ब्रजभाषा जैसी नहीं है। इसका मूलतः ढांचा बंगला तथा मैथली के सहयोग से बना है।

डॉ॰ भोलनथ तिवारी ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी भाषा' में उन मतों का उल्लेख किया है – "15वीं-16वीं शताब्दी के आसाम तथा उड़ीसा में जिस भाषा में साहित्य की रचना हुई, कृष्ण का संबंध ब्रज से होने के कारण ही कदाचित लोगोने ब्रजबूली की संज्ञा दे दी। यह व्याकरण शब्द समूह की दृष्टि से ब्रजबूली में बांग्ला तथा मैथली के अतिरिक्त ब्रज आदि पश्चिमी हिन्दी के रूपों का भी मिश्रण है"। (पृष्ठ 32-33)

**कथानक :-**

सभी लीला नाटकों चाहे दक्षिण का हो या उत्तर का हो सभी में एक सी पौराणिक कथाओं को महत्व दिया गया है। रामायण, भागवत, महाभारत की कथाएँ तथा नृसिंहलीला के प्रसंग ही लीला नाटकों की कथावस्तु है। उड़ीसा के प्रहलादनाटकम में हिरणकश्यप प्रह्लाद की कथा प्रस्तुत की जाती है।

वैष्णव आंदोलन के अंतर्गत संतों ने श्रीमदभागवत के पदों को प्रचारित किया। पूर्वाञ्चल के वैष्णव लोक नाट्यों का केंद्र जयदेव का गीतगोविंद भी श्रीमदभागवत के दसम स्कन्द पर आधारित है। बिदापत , कीर्तनियाँ, मणिपुर की गोष्ठ लीला, असम के अंकिया नाट के कालीयदमन का मूलाधार श्रीमदभागवत का चौदहवाँ, पंद्रहवाँ,सौलहवाँ, सत्रहवाँ अध्याय है।

बिहार के कीर्तनियाँ, बिदापत ,असम के अंकिया नाट आदि वैष्णव नाट्यों में मंचित होने वाले उमापति द्वारा रचित'पारिजातहरण' का मूल आधार हरिवंशपुराण (अध्याय 124-135), विष्णु पुराण (अध्याय 5,श्लोक 30-31) और श्रीमदभागवत के पारिजात पुष्प के लिए कृष्ण और इंद्रा के विवाद और युद्ध के प्रसंग पर आधारित है।मूल कथा में कृष्ण युद्ध के लिए प्रद्युम्न को नहीं अर्जुन को बुलाते है। बिदापत में कृष्ण अपनी से युद्ध करते है।

पूर्वाञ्चल के कई नाट्य रूपों का जन्म मध्यकालीन वैष्णव भक्ति की पृष्ठभूमि में हुआ इसलिए कई समानताएं मिलती है।

- पूर्वाञ्चल में लोक नाट्य रूपों का विकास संगीत से हुआ।
- पूर्वञ्चल की लगभग सभी लोकनाट्यों का मंच मुक्ताकाशी है।
- प्रदर्शन के केंद्र में पूर्वाञ्चल की वैष्णव नाट्य परंपरा के कथानक के केंद्र में कृष्ण है।
- इन सभी लोकनाट्यों में पूर्वरंग का विधान है।
- जट-जटिन को छोड़कर लगभग सभी लोकनाट्यों में स्त्री पात्र की भूमिका पुरुष ही करते हैं।
- अभिनेता को नटुआ, निर्देशक को मूलगैन तथा ग्रीन रूम को साजघर कहा गया है।
- सभी लोकनाट्यों में स्थानीय वाद्य यंत्र का प्रयोग हुआ। जबकी मृदंग लगभग सभी वैष्णव नाट्यों में है।
- सभी पूर्वाञ्चल लोकनाटकों का मंचन गैस बत्ती तथा लालटेन से होता है।

कहा जा सकता है की संतों ने एक आंदोलन के रूप में जिसकी सामाजिक भूमिका थी। सम्पूर्ण राष्ट्र को सांस्कृतिक एकसूत्र में बांधा और इसके निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई लोक नाट्यों ने जिन्हें बहुजन सम्प्रेषण का माध्यम माना गया है। वैष्णव नाट्य परंपरा ने सही अर्थों में सपूर्ण राष्ट्र को सामाजिक सांस्कृतिक दिशा देते हुए एकता का पाठ दिया।

# परिशिष्ट

## वैष्णव नाट्य परम्पराओं के चित्र

- असम

- अंकिया नाट

**भाओना**

**मणिपुर:-**

- **रासलीला**

## शुमाङ्ग लीला:-

MANIPUR SUMANG LEELA FESTIVAL:08-09
MANIPUR STATE KALA AKADEMI

**बंगाल:-**

- **जात्रा**

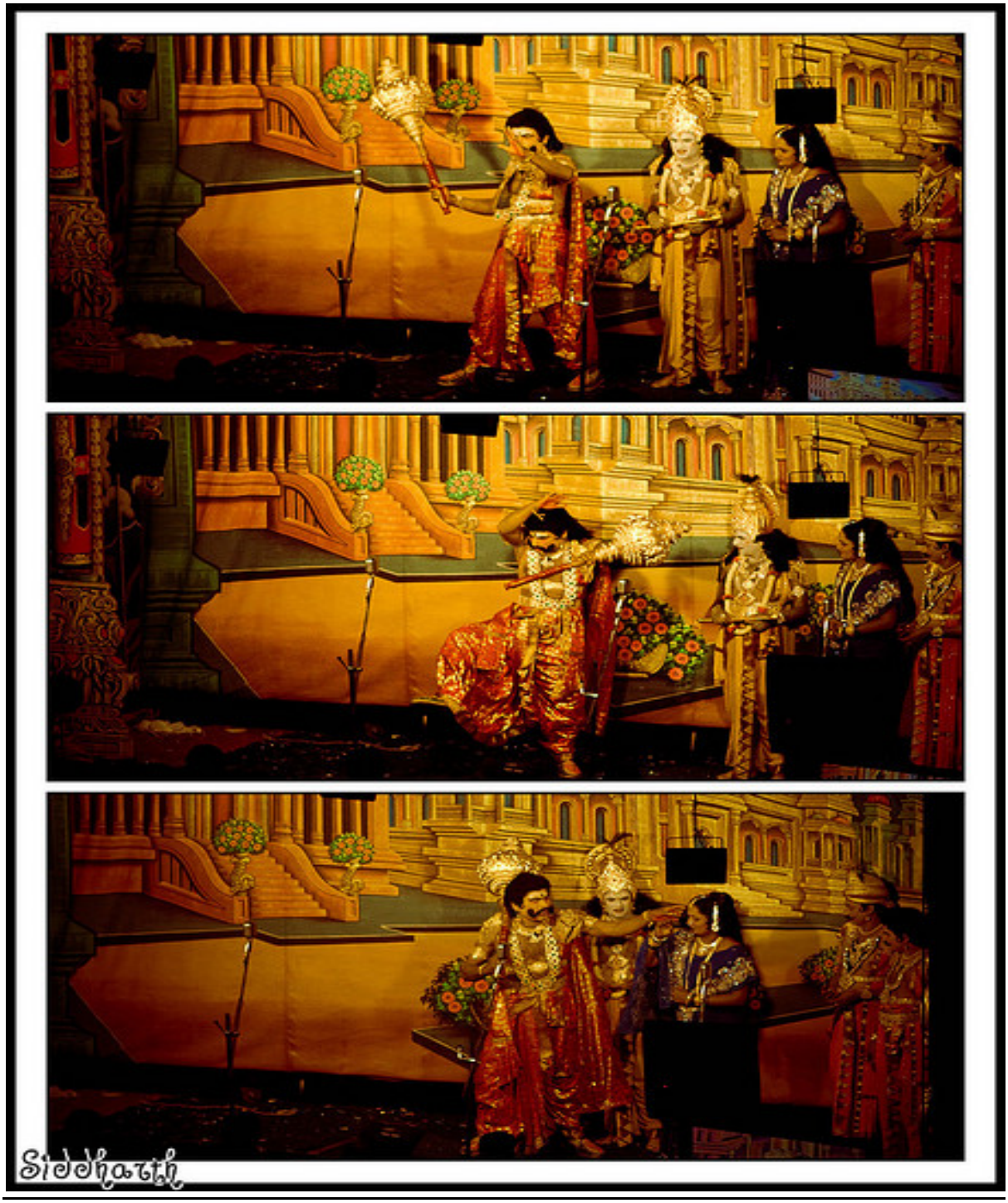

**उड़ीसा:-**

- **प्रह्लादनाटकम:-**

**धनु जात्रा :-**

## उत्तर प्रदेश:-

- **रासलीला**

**रामलीला**

महाराष्ट्र:-

- दशावतार

आंध्र प्रदेश :-

- भागवत मेल :-

**कर्नाटक :-**

- **कूडियाट्टम:-**

**यक्षगान :-**

## `बिदापत  नाच की प्रस्तुति

लोककला महोत्सव
राष्ट्रीय संगोष्ठी-सह-प्रदर्शन
17-19 अक्टूबर 2012

लोककला महोत्स
राष्ट्रीय संगोष्ठी-सह-
17-19 अक्टूबर 201
गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, पूर्व
एवं
क अध्ययन केन्द्र, काशी
सी न्यास तथा संगीत एवं मंच

# संदर्भ ग्रंथ

# संदर्भ ग्रंथ सूची


1. Choudhary ,p.c roy ,NBT,1976
2. अग्रवाल, रामनारायण, 'ब्रज का रास रंगमंच', नेशनल पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद, 1981
3. अग्रवाल, वसुदेवशरण, 'पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ', ब्रज साहित्य मण्डल, मथुरा, 2010
4. अवस्थी, इन्दुजा, 'रामलीला: परंपरा और शैलियाँ', राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1979
5. आर.आर.,दिवाकर, 'बिहार थ्रु दि एजेज़',पटना,1974
6. ओझा , दशरथ :हिन्दी नाटक :उद्भव और विकास,राजपाल एंड संस प्रकाशन दिल्ली , 2003
7. कृष्णदास : हमारी नाट्य परंपरा
8. गार्गी ,बलवंत :फोक थियेटर ऑफ इंडिया,युनिवर्सिटी ऑफ वाशिंगटन,1966
9. चंद्र, सतीश, 'मध्यकालीन भरत में इतिहास लेखन, धर्म और राज्य का स्वरूप, ग्रंथ प्रकाशन, दिल्ली, 1999
10. चंद्र,सतीश, 'मध्यकालीन भारत: राजनीति, समाज और संस्कृति', ओरियंट ब्लैक स्वान प्रकाशन, दिल्ली, 2007
11. चौधरी , राधाकृष्णन : मिथिला इन द एज ऑफ विद्यापति।
12. जयसवाल,सुवीरा, 'ऑरिजिन एंड डेवेलपमेंट ऑफ वैष्णविज्म, दिल्ली, 1967
13. जैन, नेमिचन्द्र, 'रंगदर्शन', राधाकृष्ण, दिल्ली, 1993
14. झा, रामदेव, 'मैथली लोकसाहित्य: स्वरूप और सौंदर्य', मिथिला रिसर्च सोसाइटी, दरभंगा, 2002
15. झा, सीताराम, 'हिन्दी नाटक का समाजशास्त्रीय अध्ययन', पटना, 1974
16. ठाकुर,अनंत लाल, 'कोम्प्रिहेंसिवे हिस्टरी ऑफ बिहार: खंड 1',भाग 1, पटना,1974
17. त्रिपाठी, रामछबीला, 'भारतीय साहित्य', वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2008
18. त्रिपाठी,विश्वनाथ, 'हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास', ओरियंट ब्लैक स्वान प्रकाशन, दिल्ली,2007
19. दीक्षित , सुरेन्द्रनाथ :भारत और भारतीय नाट्यकला।
20. दुबे, श्यामसुन्दर : लोक परम्परा, पहचान एवं प्रवाह, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड , जगतपुरी दिल्ली, 2003

21. द्विवेदी, हजारिप्रसाद, 'मध्यकालीन धर्म साधना', इलाहाबाद, 1962
22. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, 'हिन्दी साहित्य की भूमिका', मुंबई, 1963
23. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल', पटना, 1961
24. नगेन्द्र (संपादक), 'भारतीय साहित्य का समेकीत इतिहास', हिन्दी मध्यम कार्यान्वय निदेशालाय, दिल्ली, 1989
25. परमार,श्याम : लोकधर्मी नाट्य परंपरा
26. पाठक,सर्वदानद, 'विष्णु पुराण का भरत',वाराणसी,1958
27. पाण्डेय,मैनेजर , 'भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य', वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1993
28. प्रसाद, ईश्वरीप्रसाद, 'मेडविएल इंडिया', दिल्ली, 1933
29. बाशम,ए. एल., 'अद्भुत भारत', आगरा, 1988
30. भंडारकर,आर.जी., 'वैष्णविज़्म', शैविज़्म एंड आदर माइनर सेक्टस, लंदन, 1918
31. भगवानदास, 'कृष्ण', भारतीय विद्या भवन, मुंबई , 1962
32. भागवत , महेंद्र : लोकनाट्य परंपरा और प्रवतियाँ।
33. भारती , ओमप्रकाश : 'बिहार के पारंपरिक नाट्य' ,उत्तर मध्य क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र, इलाहाबाद,2007,
34. भारती, ओमप्रकाश, ' लोकायन: लोककला रूपों पर एकाग्र', धरोहर, साहिबाबाद, 2007
35. भारती, ओमप्रकाश, 'पूर्वोत्तर भारत के लोकनाट्य, धरोहर, साहिबाबाद, 2011
36. भारती, ओमप्रकाश, 'मिथलिक लोकनाट्य', धरोहर, साहिबाबाद, 2009
37. भारद्वाज, प्रवीण, 'मिथिला मंजुली शंकरदेव', नवारम्भ प्रकाशन, पटना, 2011
38. मलांगिया, महेंद्र, 'मैथली लोकनाट्य विस्तृत अध्ययन और विश्लेषण', मैथली लोकरंग, दिल्ली, 2009
39. माथुर ,जगदीशचन्द्र,दशरथ ओझा : प्राचीन भाषा नाटक संग्रह
40. माथुर, जगदीशचन्द्र : 'परम्पराशील नाट्य', , राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, 2006
41. मिश्र, भुवनेश्वरनाथ, 'वैष्णव साधना और सिद्धान्त', हिन्दी ग्रंथ अकादमी, बिहार, 1973
42. मिश्र, श्रीचंद्रनाथ 'मैथली लोकसाहित्य', साहित्य अकादमी, दिल्ली, 2006
43. मिश्र,शिवकुमार 'भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य',अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, 2005
44. रंगाचार्य,आद्य : इंडियन थिएटर,एन .बी.टी ,1971
45. राय चौधरी, हेमचन्द्र, 'अर्ली हिस्टरी ऑफ दि वैष्णव एक्ट', दिल्ली, 1982

46. रिजवी,मुनिरुद्दीन, 'सांस्कृतिक भूगोल', राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, राजस्थान, 1986
47. रूबेन, वाल्टर, 'स्टडीज़ इन एशिएंट इंडियन थाट', कलकत्ता, 1966
48. वात्स्यायन, कपिला 'पारंपरिक भारतीय रंगमंच अनंत धाराएँ, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ग्रीन पार्क, नई दिल्ली,1995,
49. वात्स्यायन, कपिला, 'गीतगोविंद', लोकभारती प्रकाशन', इलाहाबाद,1999
50. विद्यालंकार, सत्यकेतु, 'दक्षिण- पूर्वी और दक्षिण एशिया में भारतीय संस्कृति',सरस्वती सदन , 2007
51. शर्मा, आर.एस., 'सोशल चेंज इन अर्ली मेड्विएल इंडिया', दिल्ली,1969
52. शर्मा, कृष्णदेव, 'विद्यापति और उनकी पदावलियाँ',पटना, 1962
53. शर्मा, बी. एन., 'सोशल एंड कल्चरल हिस्टरी ऑफ नार्दन इंडिया', नई दिल्ली, 1972
54. शर्मा, भारतीय साहित्य की भूमिका, 'राजकमल प्रकाशन' दिल्ली, 1996
55. शर्मा, मुंशिराम, 'भक्ति का विकास', वाराणसी, 1958
56. शर्मा, हरवंश लाल, 'भागवत दर्शन', अलीगढ़, 2010
57. शोभा, सावित्रीचंद, 'सोशल लाइफ एंड कान्सैप्ट इन मेडीयवल हिन्दी भक्तिपोएट्री', दिल्ली, 1983
58. सिंह , प्रेमशंकर : मैथली नाटक और रंगमंच ।
59. सिंह, शिवप्रसाद, 'विद्यापति', लोकभारती प्रकाशन, 2010
60. सिंह,कुंवरपाल, 'भक्ति आंदोलन : इतिहास और संस्कृति', वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2002
61. सिंह,गोपेश्वर(संपादित), 'भक्ति आंदोलन के सामाजिक आधार', भारतीय प्रकाशन संस्थान, दिल्ली, 2002
62. सी. वी. वैद्य, 'हिस्टरी ऑफ मेडिएवल हिन्दू इंडिया ',पुणे, 1962
63. सेन,सुकुमार, 'बांग्ला साहित्य का इतिहास',साहित्य अकादमी, दिल्ली, 1971
64. हाउजर, आर्नल्ड, 'कला का इतिहास दर्शन', ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली, 2001

**<u>पत्रिकाएँ</u>**

1. चौमासा, अंक 29, वर्ष -9, जुलाई 1992
2. चौमासा,अंक -56, वर्ष -18, जुलाई 2001
3. नागरी प्रचारणी पत्रिका, अंक – 3-4, वर्ष- 65
4. नाट्य – भारती , अंक – 2 , त्रैमासिक वर्ष -1992 संपादक ओमप्रकाश भारती ।

5. पारिजातहरण (उमापति ) – ग्रियर्सन,दी जर्नल ऑफ दी बिहार रिसर्च सोसाईटी – मार्च –जून ,1947
6. बिदापत – आलेख – डॉ ओमप्रकाश भारती (भंगिमा , मैथली नाटक विशेषांक दिसंबर 2005 )
7. बिहार थियेटर जनरल, अंक 13, वर्ष 1954
8. लोकधर्मी नाट्य परंपरा – बिदापत ( रंग अभियान , अंक 4 – आलेख – प्रफ्फुल कुमार सिंह )
9. हिन्दी अनुशीलन, अंक- 2, वर्ष -7
10. हिन्दुस्तानी, जनवरी, अंक 1, भाग -7, 137

**कोश :-**

**1.** अमरनाथ, 'हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2009
**2.** लाल, अनंदा, 'थिएटर ऑफ इंडिया' ऑक्सफोर्ड प्रेस, नई दिल्ली, 2009